ओ३म्

ऋषि बोध

आर्योदय

विशेषांक

आर्य सभा मॉरीशस

RISHI BODH

Aryodaye - Special Issue 2016

ARYA SABHA MAURITIUS

CONTENTS

विषय-सूची

पृष्ठ Page

हमारा आभार – डा० उदय नारायण गंगू, *प्रधान सम्पादक* 1

सम्पादकीय - भारत का सर्वोपरि आर्य-पुत्र – श्री बालचन्द तानाकूर, *पी.एम.एस.एम, आर्य रत्न* 2

पावमानीय मंत्र / LA PURIFICATION DE L'AME -- Shri Narainduth Ghoorah 3

Time to Re-Engineer Society -- Shri Raj Sobrun, Manager Arya Sabha 4

सच्ची गुरु-दक्षिणा – डा० उदय नारायण गंगू, *ओ.एस.के, आर्य रत्न - प्रधान आर्य सभा* 5-7

स्वामी दयानन्द के राजनीतिक विचार – श्री सत्यदेव प्रीतम, *सी.एस.के., आर्य रत्न, उपप्रधान आर्य सभा* 7-8

महर्षि दयानन्द और उनके समाज-सुधार-कार्य – श्री हरिदेव रामधनी, *आर्य रत्न, मन्त्री आर्य सभा* 9-10

ऋषि बोधोत्सवः – डॉ० ऋचा शर्मा मोकूनलाल, *एम.ए.,पी.एच.डी(संस्कृत),अध्यापिका डी.ए.वी. कॉलेज* 10

स्वामी दयानन्द और शिक्षित समाज – पण्डित यश्वन्तलाल चूड़ामणि, *एम.,एस.के.,आर्य भूषण* 11-12

स्वामी दयानन्द का धार्मिक-सुधार – पंडित धर्मेन्द्र रिकाई, *आर्य भूषण* 12-13

ऋषि बोध और वैदिक धर्म – पंडिता अन्जनी मोहिपथ, *शास्त्री* 13-14

स्वामी दयानन्द का सुधार-कार्य – पंडिता राजवंश सोलिक, *शास्त्री* 15-17

युवा पीढ़ी के लिए – महर्षि दयानन्द की अमर कहानी – पंडित कविराज खेदू, *शास्त्री* 18-19

Rishi Dayanand's Views on Education -- Prof. Soodursun Jugessur,*CSK,GOSK,Arya Bhushan, Dharma Bhushan* 20-21

Tribute of Sri KM Munshi to Maharshi Dayananda Saraswati -- *Shri Kanhaiyalal Maneklal Munshi* 21

Some beliefs and disbeliefs of Swami Dayanand Saraswati ji -- Smt. Rutnabhooshita Puchooa, *M.A.,P.G.C.E.* 22-23

Rishi Bodh Mahotsav : Swami Dayanand and Gender Parity -- Smt. Poonum Sookun-Teeluckdharry, Barrister at Law, LLM, President, AWWA 24

The Importance to celebrate 'Rishi Bodh' -- Smt. Geeanmatee Ghoorah 25

Rishi Bodh -- Shri Ramkarrun Jokhoo 26-27

I want to go home - Where is your home? -- Shri Mansjay Sobnach 27-28

Yogi Bramdeo MOKOONLALL, Darshanāchārya, Arya Sabha Mauritius 29-32

Ten Principles of Arya Samaj 33

हमारा आभार

'ऋषि बोध' के शुभावसर पर यह विशेषांक प्रबुद्ध पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है । लेखक-लेखिकाओं को हमारा विशेष धन्यवाद है ।

कुछ लेखों में विचारों की द्विरुक्ति हुई है। समयाभाव के कारण हम सम्पादन-कार्य में पूर्णतया समर्थ न हो सके । अपनी असमर्थता का हमें खेद है । आशा है, पाठक इस अंक के लेखों से लाभान्वित होंगे ।

डा० उदय नारायण गंगू
प्रधान सम्पादक

सम्पादकीय

भारत का सर्वोपरि आर्य-पुत्र

बालचन्द तनाकूर, पी.एम.एस.एम, आर्य रत्न

भारत वर्ष का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि महाभारत के भयंकर और विनाशक युद्ध में बहुत से संत, महात्मा, वेदज्ञ, आचार्य और प्रकाण्ड विद्वान् मारे गये थे। जो पाखण्डी, स्वार्थी और ढोंगी धार्मिक नेता बचे हुए थे, उनके व्यवहारों से हिन्दू समाज निराश हो गया था । जिन कारणों से सदियों तक भारत में वैदिक-विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञान का उत्थान नहीं हो पा रहा था। उस घोर अज्ञान के अंधकार में भारतीय जनता को सही मार्ग-दिशा दिखाने वाला कोई नहीं था। सत्य-विद्याओं के अभाव में अनेक मत-मतान्तरों का उदय हो गया था और धर्म के नाम पर तरह-तरह के ढोंग अंधविश्वास और भ्रम फैल रहे थे। हिन्दुओं का विश्वास ईश्वर पर से हटता जा रहा था।

भारत की ऐसी गम्भीर परिस्थिति में दूसरी तरफ़ मुगलों के अत्याचार और विदेशी शासकों के अन्याय, तथा शोषणों से भारतवंशी बेबस और लाचार थे। उस दयनीय परिस्थिति में ईश्वर प्रदत्त एक आर्य-पुत्र को जन्म लेना अति आवश्यक था।

भारत की पुण्य-भूमि पर हर एक महासंकटकालीन स्थिति में भारतीयों की सुरक्षा निमित्त कोई न कोई महामानव जन्म लेते रहे । उन महापुरुषों में सौभाग्य से १९ वीं सदी में गुजरात प्रान्त के टंकारा नामक नगर में श्री कर्षणलाल तिवारी जी के परिवार में एक सर्वोपरि आर्य-पुत्र का जन्म हुआ था।

कर्षणलाल तिवारी के उस होनहार पुत्र का नाम मूलशंकर रखा गया था और परिवार के लोग प्यार से उन्हें दयाराम भी कहते थे। उस आर्य पुत्र की शिक्षा-दीक्षा घर पर ही आरम्भ हुई थी। वे एक मेधावी बालक थे, उनके बौद्धिक बल, गुण-कर्म आदि देखकर सारे परिवार कहते थे कि यह सपूत हमारे परिवार का नाम चमकाने वाला होगा, परन्तु उन्हें यह पता नहीं था कि एक दिन यह वरद-पुत्र समस्त हिन्दू समाज को चमका देगा।

मूलशंकर एक आज्ञाकारी पुत्र थे। अपने माता-पिता, रिश्तेदारों और गुरुजनों के आदेश को मानते थे। पिता जी की प्रेरणा से वे बचपन ही में संस्कृत सीखने लगे थे और वेद-मन्त्रों व श्लोकों को कंठस्थ करने का अभ्यास करने लगे थे। मेधावी होने के कारण १४ वर्ष की आयु में वे यजुर्वेद के मन्त्रों को कंठस्थ कर चुके थे, फिर किशोरावस्था ही में विद्वानों, पंडितों, आचार्यों के सम्पर्क में रहकर शास्त्रों और संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करने लगे थे।

महाशिवरात्रि पर्व के अवसर पर अपने पिता के आदेश अनुसार वे शिवमंदिर में रात्रि जागरण करने गये और जो दृश्य उन्होंने जागरण के समय देखा, उससे उस ईश्वर प्रदत्त पुत्र के मन में भारी क्रान्ति मची । उस समय वे सत्य-असत्य, बोध-अबोध, सही या गलत कर्म-अकर्म के सम्बन्ध में सोच-विचार और तर्क-वितर्क करने लगे और घर लौट आए ।

भारत का सर्वश्रेष्ठ आर्य-पुत्र वेदों का उद्धार, समाज का सुधार और मानव-कल्याण निमित्त ही तो पैदा हुए थे। अबोध-असहाय, दुखित जनों की रक्षा करने के लिए युगों बाद वरदान पाकर आए थे। इसीलिए २१ वर्ष की उम्र में ही अपने परिवारों, सखा-सम्बन्धियों आदि से उनकी मोह-माया हट गई, वे सच्चे गुरुओं की खोज में घर से निकल गये और वर्षों तक सच्चे संतों, महात्माओं, वेदज्ञों और गुरुजनों के आश्रम में शिक्षा ग्रहण करते रहे । कालांतर में वेदों की सत्यविद्याएँ तथा सच्चे ईश्वर के स्वरूप को जान ही गए और दीक्षा लेने के बाद मूलशंकर से स्वामी दयानन्द के नाम से हिन्दू समाज में प्रसिद्ध हुए ।

आर्यसमाज के संस्थापक देवर्षि दयानन्द जी ने अपने अल्पकालिक जीवन में जितने महान् कार्य किए हैं, वे बड़े ही सराहनीय है । उनके तप-त्याग, साहस, आत्मबल, मनोबल, पुरुषार्थ, सेवाभाव, परोपकार और व्यक्तित्व आदि अद्वितीय है । सर्वगुण सम्पन्न दयानन्द के गुण-कर्मों और सारे सेवा कार्यों को देखकर ऐसा नहीं लगता है कि एक इन्सान में इतने सारे गुण हो सकते हैं । स्वामी दयानन्द सचमुच एक वरदपुत्र थे।

१९ वीं सदी के सर्वोपरि आर्य पुत्र महर्षि दयानन्द जी ही माने जाते हैं । उनके बाद आज तक भारत भूमि पर कोई भी ऐसा महामानव पैदा नहीं हुआ है । वास्तव में कई युगों बाद उनके समान महात्मा संसार में आते हैं । उनका आदर्श जीवन हर युग में मानव जाति को सत्य का आलोक दिखाता रहेगा और हमें प्रेरित करता रहेगा ।

दयानन्द दशमी एवं ऋषि बोधोत्सव हम समस्त आर्य परिवारों के लिए एक महान् पर्व है, अगर हम इस पर्व से प्रेरित होकर अपने बच्चों, युवा-युवतियों और अपने भटके हुए भाई-बहनों को आर्यसमाज के सिद्धान्त अनुकूल सत्य-विद्याएँ प्रदान करते रहेंगे और स्वामी दयानन्द की विचारधारा को घर-घर पहुँचाने में सफल होंगे तो इस पर्व का आयोजन साकार साबित होगा ।

पाठक वृंद ! आर्य सभा के तत्वावधान में, प्रेस समिति तथा हमारे लेखक-लेखिकाओं के पूरे सहयोग से ऋषि बोधोत्सव के उपलक्ष्य में आर्योदय का एक विशेषांक प्रकाशित किया गया है । हमें पूरा विश्वास है कि यह पत्र आपके लिए रोचक और शिक्षाप्रद होगा । ◘

पावमानीय मंत्र / LA PURIFICATION DE L'AME

Naraindra Ghoorah, P.M.S.M.

ओ३म् अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ।। ऋग्वेद ९/६६/१९

Om ! Agna āyunshi pavas ā suvorjamisham cha nah.
Āre bādhasva doukchounām. *Rig Veda 9/66/19*

ओ३म् अग्निऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम् ।। ऋग्वेद ९/६६/२०

Om ! Agnirishi pavmānah pānchajanyah purohitah.
Tamimahe mahāgayam. *Rig Veda 9/66/20*

ओ३म् अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् ।
दधद्रयिं मयि पोषम् ।। ऋग्वेद ९/६६/२१

Om ! Agne pavasva svapā asme varchah suviryam.
Dadhadrayim mayi posham. *Rig Veda 9/66/21*

Glossaire / Shabdārtha :

Agne : O Dieu Omniscient – Le détenteur de toutes connaissances; **Ayunshi** : nos vies, **Pavasé** – Tu protèges, tu purifies, tu bénis ; **Cha** : et, Naha : nous, pour nous; **Urjam** : l'énergie, la force, la vitalité ; **Isham** : La nourriture, āsuva : donne-nous ; **Dukchunām** : les malfaiteurs ; **Āre, Bādhasva** : éloigne de nous ; **Rishi** : Dieu qui est omniprésent ; **Pavmānah** : purifie tout / purificateur; **Pānchajanyah** : qui active et guide nos cinq organes des sens dans la bonne direction ; **Purohitah** : nous offrons notre dévotion au Seigneur digne de notre adoration ; **Mahāgayam** : les sages qui nous font acquérir la connaissance universelle des Vedas ; **Ta** : qui, de qui, à qui, **Imahe** : Nos vœux/souhaits d'acquérir, la richesse, le bonheur, la longévité etc.; **Pavasva** : Que tu me purifies, **Swapāh** : Qui accomplit une tâche admirable ; **Asme** : en nous; **Varchah** : donne moi la force, l'énergie et la capacité intellectuelle ; **Mayi** : en moi ; **Suviryam** : qui est très puissant, **Posham** : bien nourrir ; **Dadhat** – donner, conférer, pourvoir, attribuer

Interprétation / Anushilan

Ces trois versets, puisés du Rig Veda, dans l'ensemble, forment partie de notre rite védique – Le "Deva Yajna" – où il y a "Ashtājyāhuti / Pavamānyāhuti" et où au début de chaque verset sont inclus les mots suivants : "Om bhurbhuva swaha". Le thème principal de ces versets est la purification de l'âme.

Ces trois versets mettent en exergue les attributs de Dieu, L'Etre Suprême.

Le Seigneur est notre protecteur. Il est notre guide éternel. Il est la vérité, la source de toute lumière et le détenteur de toutes connaissances, la béatitude parfaite, le soutien et le Seigneur de tous, le havre de paix, le maître suprême de l'univers, éternel, saint, juste, immortel, tout-puissant, miséricordieux, pénétrant tout, infini, incorporel, immuable et exempt de crainte.

C'est lui seul qui est digne de notre adoration. Nous sollicitons sa bénédiction et sa protection. Nous voudrions aussi que le Seigneur nous protège des malfaiteurs, qu'il nous pourvoie de la nourriture, qu'il éloigne de nous les malheurs, les maladies et la souffrance ou l'angoisse (inquiétude / tristesse).

Ce n'est que par notre dévotion au Seigneur et nos bonnes actions que nous recevrons sa bénédiction. Il nous faut à tout prix éviter les mauvaises fréquentations et rester en compagnie des sages, des ascètes et des hommes saints.

En conséquence, Il purifie notre âme, notre esprit, et notre corps de sorte que nous puissions jouir d'une très bonne santé, avoir la force et la vigueur dans nos membres et nos organes de sens et d'actions (physiques). Il nous guide dans la bonne voie afin que nous puissions progresser dans la vie, acquérir la connaissance, la compétence intellectuelle, la richesse, le bonheur et la gloire et que nous soyons heureux et à l'abri de tout besoin.

Toute personne qui, par ses bonnes actions et sa dévotion, suit la voie du salut (de la spiritualité) sera bénie par le Seigneur. Elle atteindra le but ultime de la vie humaine sur la terre – Le bonheur suprême / La Félicité Eternelle (Moksha). ◘

TIME TO RE-ENGINEER SOCIETY

Each year we celebrate Rishi Bodh Mahotsav at regional and National level with a view to impart the knowledge as propounded by Maharshi Dayanand Saraswati. During the celebrations we try to highlight upon the different struggles which Swami Dayanand had to face in search of true knowledge. In doing so, we ignore the real message which that great seer left for us that is; ***"to enlighten first our own self, then try to enlighten others".***

It is high time that we think about our youngsters who will be the future leaders of the Arya Samaj. We have a lot homework to empower the young generation. It is not an easy task but not impossible. We all witness the daily incidents happening to youngsters since their tender age. We usually complain that they are not interested in social, cultural and spiritual activities. Since it is a very sensitive issue they will have to be handled with care and attention. Proper guidance and understanding about their feelings are very important. A human approach will help in developing personal awareness, self-understanding and appreciation of own selves. In order to encourage the youths to take the plunge in social activities we will have to consider the following aspects:

• **Empathy ---** Empathy is the ability to stand in the other person's shoes – to see the world as they see it. We have to understand the young generation who are mostly evolving in a virtual and/or make-believe world. Our way of doing things have to be adapted. We cannot emphasise on the traditional way at all times; basic values are consistent. It is extremely important to use modern tools (Internet and new technologies) to attract youngsters towards the teachings of Maharshi Dayanand.

• **Non-Judgmental ---** In order to create the warmth we should be non-judgmental while dealing with youth. In many situations we impose our decision to them and become judgmental. Listening to what they have to say is an essential skill if we want to bring them 'back home.'

• **Respect ---** Respecting each other is another essential element to be considered while dealing with youngsters. It seems that mutual respect is a rare spice in our day-to-day life. Children are brought up in utter ignorance that they should have respect for the elderly and vice-versa.

The whole Mauritian population has been shocked with the terrible crime committed by a 17-year old adolescent on Friday 26 February 2016 at Camp de Masque Pave, killing a 14-year old girl and her grand- mother of 54 years with an unbelievable atrocity. He has also injured a child of 11 years who is fighting for survival. Decadence in our society has reached over-alarming stage. We need urgent action to remedy to the situation. With the rapid development and modernization it seems that no one has time for each other. Parents are unable to spend quality time with their kids; even no time to sit and have dinner together. They are busy amassing material wealth for a better future for their kids but completely ignoring the essence: affection, attention, listening, talking, understanding, sharing, teaching moral and spiritual values, proper guidance from infancy, socializing and a healthy holistic growth.

It is the duty of all stake-holders comprising of Government, families, NGO's and the civil society at large to think and re-think about re-engineering our society in order to prepare our youngsters for a better future.

Adding to citizenship education being carried out through Satsanghs and evening schools in the 400+ branches (Arya Samajs, Arya Mahila Samajs, Arya Yuvak / Yuvati Sanghs) for the past hundred years, Arya Sabha Mauritius has started a Gurukul since January last as a week-end residential camp for students of 11 to 15 years. They are being trained as from their tender adolescence to become good citizens. Indeed a laudable project! This initiative is a very farsighted project to prepare youngsters to be the torch bearers of our society.

With due consideration to the 3 aspects (empathy, non-judgmental & respect) we would definitely encourage more and more youths to commit themselves to create a better society and environment. They would harmonize thoughts, speech and actions, and indeed live-up to ideals of the 6th principle of the Arya Samaj: 'to uplift the physical, moral and spiritual standards of all.'

Raj Sobrun
BA (Counselling), MSc (Social Development)
Manager, Arya Sabha Mauritius

सच्ची गुरु-दक्षिणा

डॉ० उदयनारायण गंगू, ओ.एस.के., आर्य रत्न - प्रधान आर्य सभा

गुरु-दक्षिणा की परम्परा ऋषि-परम्परा की ही भाँति चिरकाल से चली आ रही है। रामायण काल में गुरु वसिष्ठ, महाभारत काल में वेदव्यास एवं द्रोणाचार्य तथा ब्रिटिशकाल में गुरु विरजानन्द अपने-अपने आदर्श शिष्यों के कारण चिरस्मरणीय हो गए हैं। एकलव्य ने गुरु आदेश को शिरोधार्य करते हुए अपना अँगूठा काटकर गुरु द्रोण के चरणों में रख दिया और दयामय दयानन्द अपना सम्पूर्ण जीवन गुरु विरजानन्द को समर्पित करके, अपूर्व गुरु-दक्षिणा दे गये। इसी प्रकार मॉरीशस के आर्य जगत् में पंडित काशीनाथ किष्टो अपनी गुरु-दक्षिणा के कारण भुलाए नहीं जा सकते। उन्होंने जगत् गुरु महर्षि दयानन्द को अपने हृदय-पटल में पथ-प्रदर्शक-रूप में आसीन किया था।

पंडित काशीनाथ किष्टो

ऋषिबोधोत्सव मनाने वालों को यह जानना अपरिहार्य है कि पंडित काशीनाथ ने अपने गुरु को दक्षिणा में क्या दिया। ४ जून १८८४ को सावान ज़िले के 'लुशाँ' ग्राम में जन्म लेने वाले काशीनाथ २७ वर्ष की अवस्था में मणिलाल डॉक्टर के साथ भारत गये। वे वैदिक ज्ञानार्जन करने के लिए पंजाब पहुँचे, जहाँ पाँच वर्षों तक डी०ए०वी० कॉलिज में अध्ययन-रत रहे। सन् १९१६ में महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं से सुभूषित होकर महात्मा हंसराज का आशीर्वाद लिये स्वदेश लौटे। महात्मा हंसराज ने काशीनाथ की बही में लिखा था – 'काशीनाथ, मॉरीशस तुम्हारा देश है, जाओ वहाँ शिक्षा का प्रचार करो और लोगों को शान्ति, न्याय और सम्मान से जीने का सन्देश दो ।'

बस क्या था? मॉरीशस की धरती पर पदार्पण के दूसरे ही दिन वे स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज से मिले। उन दिनों स्वामी जी महाराज के मार्ग-दर्शन में 'आर्य परोपकारिणी सभा' वैदिक धर्म के प्रचार-कार्य में संलग्न थी। पंडित काशीनाथ जी सभा के अधिकारियों – श्री खेरसिंह, श्री जयनारायण रामजीलाल, पंडित गयासिंह, श्री मोती मास्टर, माधोलाल जी, शिवशंकर जी, रामेश्वर जी आदि से मिले। तत्कालीन प्रधान श्री दलजीतलाल ने तीस रुपये के मासिक वेतन पर पंडित काशीनाथ जी को 'आर्य परोपकारिणी सभा' के धर्मोपदेशक के रूप में नियुक्त करते हुए अपार प्रसन्नता का अनुभव किया ।

जैसे गुरु विरजानन्द से विदाई लेने के पश्चात् महर्षि दयानन्द को वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार-कार्य में मात्र दो दशक प्राप्त हुए थे, वैसे ही पंडित काशीनाथ किष्टो को महात्मा हंसराज से अन्तिम वार्ता करने के बाद केवल तीन दशक ही कार्य करने का अवसर मिला । क्रूर मृत्यु का बुलावा शीघ्र ही आ गया । वे १८ अप्रैल १९४७ को तिरसठ वर्ष की आयु में चल बसे। अपने कार्यकाल में वे दोनों सभाओं – 'आर्य परोपकारिणी सभा' और 'आर्य प्रतिनिधि सभा' – की सेवा में समर्पित रहे । उन्होंने हवन-प्रवचन, गायन-लेखन, शिक्षण-सम्पादन और शास्त्रार्थ के माध्यम से आर्यसमाज को अखिल मॉरीशस में प्रसिद्ध कर दिया। उनके प्रमुख शिष्यों में श्री मोहनलाल मोहित, पं० जगनन्दन, पं० रामरतन विद्यार्थी, श्री छत्तर मास्टर. श्री रामधन पूरण, श्री रामलाल गुमानी, श्री रामप्रसाद नीऊर आदि कुशल समाज-सेवक बने, जिन्होंने उनके पश्चात् आर्यसमाज की महती सेवा की । इस तरह गुरु-दक्षिणा की परम्परा आगे बढ़ती रही ।

पंडित काशीनाथ किष्टो ने अपने लेख – 'मेरा आर्य सामाजिक जीवन' शीर्षक के अन्तर्गत लिखा – *'मेरे लिए ऋषि, महर्षि, पथप्रदर्शक, गुरु एकमात्र महर्षि दयानन्द हैं। मैं अपनी जो भी किंचित् श्रद्धा-भक्ति की पुष्पांजलि है, गुरु दयानन्द के चरण-कमलों में समर्पण करता हूँ। ..... आर्यसमाज की सेवा करके ही महर्षि का तुच्छ सेवक कहलाने का अधिकार मुझे प्राप्त हो सकता है। आर्यसमाज को हानि पहुँचाकर अपनी उदर-पूर्ति करना, ऋषि दयानन्द के रुधिर से लिपटे हुए पापमय अन्न को भक्षण कर पापमय जीवन को व्यतीत करना समझता हूँ।'*

(आर्यवीर २३ अगस्त, १९२६)

उपर्युक्त शब्दों में कितनी श्रद्धापूर्ण भावना व्यक्त की है पंडित काशीनाथ किष्टो ने महर्षि दयानन्द और महर्षि

द्वारा स्थापित आर्यसमाज के प्रति । क्या 'ऋषिबोधोत्सव' मनाने वाले वैदिक धर्मी पंडित जी के उक्त हृदय-स्पर्शी कथन से कुछ बोध प्राप्त करने का प्रयास कर पायेंगे ? आज ऐसे नर-पुंगव दिखाई देते हैं, जो समाज-सेवा करने का सपना तो देखते हैं, परन्तु जवानी बीत जाती है, जीवन की सन्ध्या चौखट पर आ खड़ी होती है, कोई निस्वार्थ सेवा हो नहीं पाती है। दिवा-स्वप्न देखने का ही सुख भोगते रहते हैं । स्मरण रहे कि समाज-सेवा का संस्कार अपने बालपन में ही प्राप्त किया जाता है ।

पंडित काशीनाथ आर्यसमाज के दीवाने थे। उनकी निस्वार्थता एवं त्याग सबके लिए अनुकरणीय है। वे ६ सितम्बर १९२९ के 'आर्यवीर' में पुनः लिखते हैं — '..... श्री रामजीलाल जी और मैं एक ही कमरे में सोने गये । अब मॉरीशस के आर्यसमाजों की परिस्थिति उन्होंने वर्णन करना आरम्भ किया ..... पोर्टलुइस की जायदाद पर कर्ज़ था, वाक्वा विद्यालय जिस भूमि पर है, उसका केवल 'बोर्दो'किया गया था। सभा के कोष में कुछ नहीं था, यहाँ तक कि ३० वा ४० रुपये की दक्षिणा देकर एक उपदेशक रखना शक्ति से बाहर था। इन व्यवस्थाओं का वर्णन करते-करते सारी रात बीत गई। अन्त में श्री रामजीलाल जी ने मेरे सम्मुख इस प्रस्ताव को रखा कि 'अब पंडित जी आप पर सारा भार छोड़ते हैं, आपको अवैतनिक रूप में काम करना पड़ेगा। ..... मेरा उत्तर यही हुआ कि 'बातात्', 'मायोक' खाकर भी आर्यसमाज की सेवा करूँगा।'

पाठकवृन्द ! श्री रामजीलाल और पंडित काशीनाथ का उपर्युक्त वार्तालाप कितना मर्मस्पर्शी है । उन जैसे कई दिलजलों ने इस देश में आर्यसमाज का झण्डा फहराया है । क्या ही अच्छा होता कि 'ऋषिबोध' के इस पावन अवसर पर हम सभी अपने पूर्व समाज-सेवकों का पदानुसरण करते । महाभारतकार ने लिखा – **महाजन येन गत सः पन्था** – अर्थात् श्रेष्ठ जन जिन पन्थों से आगे गये, वही पथ अनुकरणीय है। यह दृष्टिगोचर होता है कि वर्तमान के कई तथाकथित समाज-सेवक तुच्छ स्वार्थ एवं लोलुपताओं के शिकार बने हुए हैं, क्या वे अपने पूर्ववर्ती सेवकों से बोध प्राप्त नहीं करेंगे ?

११ मार्च १९३२ के 'आर्यवीर' में 'आदर्श संस्था' लेख के अन्तर्गत पंडित काशीनाथ जी लिखते हैं – 'हमें पूर्णतया यह निश्चय है कि महर्षि दयानन्द के प्रदर्शित पथ पर चलकर ही हिन्दू जाति अपना कल्याण कर सकती है। स्वामी जी ने आर्यसमाज को क्यों स्थापित किया ? आर्यसमाज को कायम करने से, उनका वास्तविक उद्देश्य क्या था? इन प्रश्नों की वास्तविकता आर्यों को तथा आर्य जगत् के नेताओं को भली भाँति समझ लेना चाहिए। नहीं तो महर्षि के उद्देश्यों को कदापि पूरा नहीं कर सकेंगे और आर्यसमाज अन्य सम्प्रदायों के रूप में रहकर समयान्तर अपने कर्तव्य से विभ्रष्ट होकर अपना अस्तित्व की इतिश्री कर बैठेगा।'

उपर्युक्त कथन में पंडित काशीनाथ की अन्तः पीड़ा मूर्तिमान हो उठी है। महर्षि दयानन्द के सच्चे अनुयायी ऐसी वेदना से अवश्य वेदित होंगे । साथ ही पंडित जी के इन प्रेरणादायक शब्दों से निस्वार्थ समाज-सेवक बनने को तत्पर होंगे । प्रतिवर्ष आर्य जगत् 'ऋषि बोध-दिवस' मनाता है और महर्षि दयानन्द के उपकारों के गीत गाकर येन-केन प्रकारेण उन्हें श्रद्धांजलि के फूल चढ़ा देता है। आवश्यकता है कि देवर्षि दयानन्द के अनुयायी उनके सच्चे शिष्य बनकर पंडित काशीनाथ किष्टो की तरह गुरु-दक्षिणा दें। हम सब ऋषि के ऋणी हैं। ऋषि-ऋण से उऋण होने का एक ही रास्ता है, वह यह कि हम महर्षि के अधूरे कार्यों को पूरा करने में तन-मन-धन से समर्पित हो जायें ।

इस वर्ष 'ऋषिबोधोत्सव' वाक्वा स्थित उस पुण्य भूमि में सम्पन्न होने जा रहा है, जहाँ पंडित काशीनाथ किष्टो ने सन् १९१८ ई० में एक बाल विद्या-मंदिर की स्थापना

की थी । वह विद्या मंदिर आज एक प्रतिष्ठित विद्यालय बनकर पंडित जी की कीर्ति-कथा कहते-कहते अघाता नहीं। वह लब्धप्रतिष्ठ विद्यालय कोई और नहीं, वह - 'पंडित काशीनाथ किष्टो आर्यन वैदिक स्कूल के नाम से लोकप्रिय है। इस प्राथमिक विद्यालय के नाम की ध्वनि कर्ण-कुहरों में पड़ते ही लगभग एक शताब्दी में उत्पन्न सरस्वती-पुत्रों की लम्बी सूची हज़ारों-हज़ारों लोगों के मन-मस्तिष्क में साकार हो उठती है ।

Library of RDI

वाक्वा स्थित इस विद्या-स्थली में उपस्थित होकर पवित्र हृदय वाले नर-नारी अवश्य ही बोध प्राप्त करेंगे। वहाँ महर्षि दयानन्द की जीवनियों के साथ ही वैदिक साहित्य सम्बन्धी सैकड़ों पुस्तक-पुस्तिकाओं का बिक्रय होगा । आप अवश्य खरीदिये, पढ़िए और बोध प्राप्त कीजिए। यदि आप वैदिक धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक हों, तो पाई में आर्य सभा द्वारा स्थापित 'ऋषि दयानन्द संस्थान' के विशाल पुस्तकालय में अवश्य पधारिये और पुस्तकाध्यक्ष से मिलकर अपनी मन-पसन्द पुस्तक पढ़िए। लाखों रुपये की पुस्तकें आपकी प्रतीक्षा कर रही हैं । इन पुस्तकों के अध्ययन से आप आर्य बनेंगे और गुरु-दक्षिणा का महत्व समझने में समर्थ होंगे ।

पंडित काशीनाथ अपनी कीर्ति-काया को अमर कर गये । उन्होंने अपने गुरु, महर्षि दयानन्द के उपदेशों, सन्देशों और आदेशों को शिरोधार्य किया । जैसे प्रकाश बिखेरने में दीपक की तेल-बाती जलकर अपने अस्तित्व को समाप्त कर डालती है, वैसे ही पंडित जी वैदिक ज्योति से सहस्त्रों जनों को ज्योतित करते-करते अपना जीवन-दीप असमय ही बुझा गये। उनकी गुरु-दक्षिणा सबके लिए अनुकरणीय है। उनके पद-चिह्नों का अनुसरण करने वाले वैसे ही सेवा-कार्य करके अपनी सुगन्ध चहुँ ओर फैला सकते हैं । ◘

स्वामी दयानन्द के राजनीतिक विचार

सत्यदेव प्रीतम, सी.एस.के.,आर्य रत्न

मोरिशस में और अन्यत्र भी कहा जाता है कि पोलिटिक्स याने राजनीति बहुत गंदी चीज़ है । राजनीति में लोगों को ठगा जाता है, लोगों को धोखा दिया जाता है, लोगों से झूठ बोला जाता है। पैसे से वोट खरीदा जाता है। एक बार जनता के वोट पाकर निर्वाचित हो जाते हैं तो फिर अपने वादों से मुकर जाते हैं। पर स्वामी जी ने राजनीति को एक दूसरी दृष्टि से देखा, परखा और अन्त में दृढ़ निर्णय लेकर उसको याने राजनीति को सही स्थान दिया और अपने कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में उसकी सच्ची परिभाषा दी। परतन्त्र भारत में स्वतन्त्रता प्राप्त करने का औजार बताया। जब स्वामी जी अपना महान् ग्रन्थ लिखवा रहे थे तो भारतवर्ष ५०० से अधिक छोटे छोटे देशी राज्यों में बँटा हुआ था। एक राजा दूसरे राजा से वैर, ईर्ष्या, द्वेष कर रहा था। पूरा भारत वर्ष बँटा हुआ था धर्म के नाम पर, भाषा के नाम पर और न जाने किस-किस नाम पर। जैसे भारत वर्ष में भगवान के नामों को लेकर झगड़ा चल रहा था वैसे राजनीति के नाम पर हो रहा था। स्वामी जी ने देखा उस कमज़ोरी से फायदा उठाकर विधर्मी विदेशियों ने पूरे देश पर कब्ज़ा जमा लिया है ।

स्वामी दयानन्द ने इतिहास के पन्ने पलट कर देखा भारत वर्ष में बड़ा-बड़ा साम्राज्य था। महान् प्रतापी राजा महाराजा था। देखा सम्राट चन्द्रगुप्त हुए, सम्राट अशोक हुए। और पीछो पन्ने पलटकर रामचन्द्र जी महाराज के युग की जानकारी ली ।

महाराज कृष्ण के महाभारत काल का ज्ञान पाया तो देखा कि राजनीति की दृष्टि से भारत का अधोपतन हो गया था। तब सत्यार्थप्रकाश में एक समुल्लास ही लिखकर बताया कि राजनीति रामचन्द्र जी करते थे, योगीराज कृष्ण भी करते थे, चन्द्रगुप्त और अशोक भी करते थे। अगर राजनीति अपवित्र होती तो रामचन्द्र जी क्यों राजनीति में आते। रामचन्द्र जी का राज इतना श्रेष्ठ निकला कि रामराज्य को आदर्श मानने लगे जिसका मतलब होता है सुराज ।

हमारे वर्त्तमान युग में युग पुरुष राजनीति में क्यों आते ? अंग्रेज़ जाति के लोग राजनीतिक चलाकर ५२ उपनिवेशों के मालिक बन गये। आज मोरिशस के अलावा इंग्लैण्ड की राजनीतिक प्रणाली को आदर्श मानकर अपने देश को उसी सांसदीय पद्धति पर चला रहे हैं, जिसमें जनता के प्रतिनिधि जनता के नाम पर शासन चलाते हैं ।

स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व और कृतित्व का अवलोकन करने से पता चलता है कि स्वामी जी पूरे तौर पर प्रजातान्त्रिक विचारधारा के पोषक थे। मिसाल के तौर पर आर्यसमाज के दसवें नियम में स्वामी जी लिखते हैं, 'सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।' इस नियम में बहुमत को कितना महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है । आज चारों तरफ़ माजोरिटी रूल बहुमत राज्य की दुहाई दी जा रही है। इसका मतलब यही है कि यदि एक संस्था में दस व्यक्ति हों जिनमें ६ व्यक्ति एक विचार की पुष्टि कर रहे हैं और चार विरुद्ध कर रहे हैं तो वही होना चाहिए जो छः मान रहे हैं। यही डिमोक्रेसी है, प्रजातान्त्रिक है ।

स्वामी जी ने छठे समुल्लास में उन लोगों को करारा जवाब दिया है जो राजनीति को अपवित्र या गंदा मानते हैं जब वे राजनीति को राज्यधर्म कहकर पुकारते हैं। धर्म बहुत पवित्र शब्द है। धर्म को कर्तव्य कर्म कहकर माना गया है। धर्म धारण करता है जो 'राजनीति' धर्म को धारण करेगा राजनीति उसको गिरने नहीं देगी ।

स्वामी जी तीन प्रकार की सभाएँ गिनाते हुए राजार्यसभा का भी उल्लेख किया है। मनु महाराज की स्मृति से उद्धरण देकर विचारों की पुष्टि करते हुए लिखते हैं उस राज्य सभा के सभापति के गुण कैसे होने चाहिए –

इन्द्राऽनिलय मार्काणामग्नेश्च वरुणस्य।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ।।१।।
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च ।
न चैनं भुवि शवनोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम् ।।२।।
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट ।
स कुबरेः स वरुणः सहेन्द्रः प्रभावतः ।।३।। *(मनु ७-४-६-७)*

स्वामी जी ने, राजकोष की भी चर्चा करते हुए कहा है, राजा के अधीन कोश और राजकार्य अर्थात् राजा के अधीन सब कार्य होने चाहिए।

राजा को अपने मन से काम नहीं करना चाहिए जब तक सभासदों की अनुमति न हो । अगर राजा अपने मन की मर्ज़ी करने लगे तो वह डिक्टेटर, तानाशाह, अधिनायक बन जाएगा जैसे वर्त्तमानकाल में हिटलर और मूसोलिनी बन गये थे। तानाशाही बहुत दिनों तक नहीं चलती । जनता का राज्य, जनता के लिए जनता द्वारा आज आदर्श वाक्य बन गया है ।

स्वामी जी ने लिखा है कि राजा को धार्मिक प्रवृत्ति वाला होना चाहिए । देश को चलाने के लिए शासन कार्य के लिए धन की अति आवश्यकता होती है। शासन को कर (Tax) से पैसे प्राप्त होते हैं। मनु महाराज से उद्धरण देकर स्वामी जी ने लिखा है ।

पञ्चाशन्दाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एववा *(मनु० ७/१३००*

जो व्यापार करने वाले वा शिल्पी को सुवर्ण और चाँदी का जितना लाभ हो उसमें से पचासवाँ भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवाँ वा बारहवाँ भाग लिया करें, और जो धन लेवे भी तो उस प्रकार से लेवे कि जिससे किसान आदि खाने-पीने और धन से रहित होकर दुख न पावें ।

राजनीति में इस प्रकार के व्यवहार से देश सुखी होगा। आनन्द ही आनन्द देश भर में होगा । प्रजा से राजा है, राजा से प्रजा है। दोनों को एक दूसरे का आश्रित होना चाहिए ।

आज स्वामी दयानन्द के राजनीतिक आदर्शों को यू०एन०ओ० संयुक्त राष्ट्र संघ ने मान्यता दी है। इस प्रकार स्वामी दयानन्द एक अद्वितीय समाज सुधारक थे, एक शिक्षाविद् के साथ एक राजनीतिज्ञ भी थे। ◘

महर्षि दयानन्द और उनके समाज-सुधार-कार्य

हरिदेव रामधनी, आर्य रत्न - मंत्री आर्य सभा

स्वामी दयानन्द प्राचीन ऋषियों की परम्परा वाले सच्चे ऋषि, संसार के सर्वोच्च गुरु एवं अपूर्व वेद-धर्म के प्रचारक थे। महर्षि दयानन्द ज्ञान की दृष्टि से महाभारत काल के बाद उत्पन्न हुए सर्वोच्च व शीर्ष पुरुष तो थे ही, उन्होंने वेद की सत्य मान्यताओं व सिद्धान्तों के लिखित व मौखिक प्रचार का भी कीर्तिमान स्थापित किया है। इसके लिए उन्होंने कितने कष्ट सहे, इसका अनुमान भी लगाया नहीं जा सकता। वह शायद इतिहास में पहले व्यक्ति थे जिन्होंने संसार से धार्मिक व सामाजिक अज्ञान, अन्धविश्वास, अन्याय, शोषण, उत्पीड़न को दूर कर ईश्वर की सच्ची उपासना, यज्ञ के सत्य स्वरूप का प्रचार व उसके क्रियात्मक पक्ष की विधि आदि का निर्माण व प्रचार किया। उनके द्वारा किए गये एक नहीं ऐसे अनेकानेक काम हैं जिनपर बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। मानवता की सेवा व सुधार का उन्होंने अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसके कारण हम स्वामी दयानन्द को विश्व का सर्वोच्च गुरु मानते हैं ।

महर्षि दयानन्द सिद्ध योगी और बाल ब्रह्मचारी थे। उन्होंने समस्त वेदों एवं वैदिक साहित्य का तलस्पर्शी अध्ययन किया था और अपनी विद्वत्ता से उसका मन्थन कर सत्य व असत्य विचारों व मान्यताओं को पृथक-पृथक किया था। देश हित में उन्होंने वेदों का उद्धार व समाज सुधार के अनेकानेक कार्य किये जिनसे देश व समाज को अभूतपूर्व लाभ हुआ ।

महर्षि जी की कार्य-शैली बड़ी ही महत्वपूर्ण और अलग-सी थी। उनका प्रयत्न था कि समाज की बुराइयों को जड़ से समाप्त कर दिया जाए, अतः उन्होंने देखा कि वेद जो सत्यज्ञान और धर्म का आधार है, समाज से लुप्त हो गया था। वेदों के सत्य अर्थों को तो इस अवधि में विलुप्त हुआ ही पाते हैं। उनसे पहले के आचार्य सायन, महीधर और शंकराचार्य आदि विद्वानों ने संस्कृत का सीमित ज्ञान होने के कारण वेदों का ग़लत अर्थ कर धर्म को गहरी क्षति पहुँचाई थी। महर्षि ने वेद मंत्रों की शुद्ध व्याख्या कर घोषणा की कि 'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना सब आर्यों का परम धर्म है।' अपनी इस मान्यता को वेदों का भाष्य आरम्भ करने से पूर्व, उन्होंने चारों वेदों की भूमिका के रूप में लिखी पुस्तक 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' में प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया है । साथ ही पूरे देश में घूम-घूम कर शास्त्रार्थ कर लोगों में व्याप्त भ्रम को दूर किया ।

उस समय शिक्षित लोगों की संख्या बहुत न्यून थी, अतः अविद्या अंधकार और अंधविश्वास का साम्राज्य छाया हुआ था। महर्षि ने शतपथ ब्राह्मण के शब्दों को आगे रखा - **'मातृमान पितृमान आचार्यवान् पुरुषो वेदः'** और आदेश दिया कि जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् माता, पिता और आचार्य होते हैं तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है। इस तरह महर्षि ने शिक्षा का द्वार सबके लिए खोला और गार्गी, मैत्रेयी एवं कात्यायनी जैसी विदुषी महिलाओं का उदाहरण देकर कहा कि स्त्रीवर्ग का शिक्षित होना अनिवार्य है तभी हम शिक्षित परिवार और स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकते हैं। वर्तमान समय में हम महर्षि जी के इस उद्देश्य को साक्षात्कार होते देख रहे हैं ।

महर्षि समाज का गहरा अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि हिन्दू समाज के पतन का कारण विगठन था और इस कमज़ोरी के दो मुख्य कारण थे, पहला ईश्वर के सत्य स्वरूप न समझना और दूसरा वर्ण व्यवस्था की विकृत रूप का प्रचार। उन्होंने ईश्वर के सत्य स्वरूप की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया कि ईश्वर एक है पर गुण, कर्म और स्वभाव के कारण कई नाम से जाने जाते हैं। इसका मतलभ नहीं कि ईश्वर कर्मों के अनुसार विभिन्न रूप धारण करते हैं। उस समय कि जनता जो रूढ़िवाद में जकड़े हुए थे उनको समझना और मनवाना टेढ़ी खीर था, फिर भी महर्षि ने अपनी दृढ़ता और सत्ज्ञान के बल पर यह भी कर दिखाया। फिर महर्षि ने वर्ण की परिभाषा समझाते हुए बतलाया कि व्यक्ति जन्म से बड़ा या छोटा नहीं होता बल्कि कर्म से व्यक्ति की पहचान होती है। वर्ण व्यक्ति के कर्म पर आधारित होता है और कर्म ही के आधार पर व्यक्ति का वर्ण बदल भी जाता है। वर्ण किसी भी व्यक्ति के बड़े या छोटे

होने का परिचायक नहीं होता है । संसार को चलाने के लिए हर क़िस्म के व्यक्ति की आवश्यकता होती है, अतः एक स्वस्थ समाज में सभी को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। महर्षि ने आर्यसमाज बनाकर इन सभी ग़लत धारणाओं का निराकरण किया ।

वेदों के अनुसार यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है जिससे मनुष्य अपने इहलोक तथा परलोक दोनों को सुधार कर मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर सकता है, मगर महर्षि से पूर्व के आचार्यों ने संस्कृत के गहरे ज्ञान के अभाव में यज्ञ जैसे पवित्र कर्म को एक विकृत रूप दे दिया था। यज्ञ के कई अर्थों में से एक अर्थ अध्वर भी है । अध्वर का अर्थ हिंसा रहित है पर उस समय अज्ञानता के कारण लोगों ने यज्ञ में पशु बली कर उसमें माँस की आहुति देना शुरू कर दिया था। महर्षि ने इन अन्धविश्वासों को दूर कर यज्ञ को पुनः उसका पवित्र स्वरूप दिया। 'संस्कार विधि' लिखकर वैदिक कर्मकाण्ड को परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करते हुए वैदिक ऋषियों की यज्ञ-परम्परा को पुनः स्थापित किया ।

एक स्वस्थ समाज के लिए एक स्वस्थ, स्वदेशी और स्वतंत्र राज्य का होना अनिवार्य है। युगों से दासता की बेड़ियों में जकड़ी एवं विदेशियों के अत्याचार से दबी और शोषित भारतीय जनता की आत्मा मर चुकी थी। महर्षि ने १८५७ में स्वतन्त्रता संग्राम की एक क्रांतिकारी बीज रोपा जिसके प्रभाव से भारतीय जनता की नसों में वीरता का संचार हुआ और फलतः १९४७ में भारत स्वतंत्र हुआ। आज भारतीय जनता आज़ादी की साँस ले रही है और विकास की ओर तेज़ गति से बढ़ रही है ।

लगता है आज की पढ़ी-लिखी जनता स्वार्थ या अज्ञानतावश महर्षि के इन उपकारों को भूलते जा रहे हैं और धीरे-धीरे पुनः अन्धविश्वास के उसी गर्त में फिसलते जा रहे हैं जहाँ से महर्षि ने उन्हें निकाला था। महर्षि दयानन्द जयन्ती के इस पावन अवसर पर हमारा कर्त्तव्य बनता है कि हम महर्षि जी के त्यागपूर्ण जीवन एवं उनके द्वारा रचित साहित्य पर चिंतन करें जिसे हम अपने परिवारों के भविष्य एवं समाज को सही दिशा दे सकें । ◘

ऋषि बोधोत्सवः

डॉ० ऋचा शर्मा मोकूनलाल, एम.ए., पी.एच.डी (संस्कृत),
अध्यापिका डी.ए.वी. कॉलेज

ऋषि - ऋषति गच्छति प्राप्नोति जानाति वा स ऋषिः, मन्त्रार्थ दृष्टा वा ।
(उणादिकोष ४-१२१)

बोध - बुध्यते अनेन इति बोधः, वा बोधस्य, सद्ज्ञानस्य उपलब्धिः बोधोत्सवः कथ्यते।

शिवरात्रे पर्वावसरे तेन किं सत्यम् किमसत्यम् इति ज्ञानं उपलब्धम् । गुरुविरजानन्दः तस्मिन् हृदये आर्ष ज्ञानस्य महत्वमधिगतवान् । दयानन्द स्वामिना पाखण्ड खण्डनाय, अन्धविश्वास विनाशाय, वेदानाम् वास्तविक विवेकानुसारेण अर्थ ज्ञानाय, नारीणाम् उद्धाराय, अस्पृश्यतोन्मूनाय, गुणकर्मानुसारे वर्णव्यवस्था स्थापनाय, संसारस्थित समग्र मानवानां कल्याणाय महान् प्रयत्नः कृतः ।

स्वामी दयानन्दः पूर्ण ब्रह्मचारी, त्यागी, तपस्वी, देशभक्तः, समाज सुधारकः, निर्भीक सत्यवक्ता संन्यासी आसीत्। तेन समाज सुधाराय, सत्शिक्षा प्रसाराय, पाखण्डोन्मूलनाय, वेदानां प्रचाराय, किमधिकम्, सद्मानव निर्माणाय च सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि आदि विदुषां कृते ग्रन्थाः रचिताः ।

तेन धर्मस्य वास्तविक महत्वं वर्णितम् - 'यतोऽभ्युदय - निः श्रेयससिद्धिः सधर्मः' इति लक्षणानुसारं यतो लौकिकपारलौकिक च कल्याणं जायते तदेव कर्म करणीयं नान्यत् । तेन सद्भावना स्थापनाय मानवः स्वकर्मानुसारं फलं प्राप्नोति तथा पुनर्जन्मवादस्य शास्त्रानुसारेण प्रमाण पूर्वकं प्रचारः कृतः ।

समग्रविश्वेषु सद् ज्ञानस्य प्रसाराय आर्य समाजस्य स्थापनां कृत्वा 'कृण्वन्तोविश्वमार्यम्' इति घोषणाकृता ।

निश्चयेन अस्माकम् कर्त्तव्यमस्ति यत् वयं सर्वे मिलित्वा इमां घोषणां साधयामः । ◘

स्वामी दयानन्द और शिक्षित समाज

पण्डित यश्वन्तलाल चूड़ामणि, एम.,एस.के., आर्य भूषण

इस वर्तमान युग में मानव समाज की शिक्षा के शुभचिन्तकों में महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का बहुत ऊँच स्थान है । स्वामी जी ने सिद्ध किया कि महाभारत के पश्चात् भारतवर्ष की सामाजिक और धार्मिक दुर्गति का प्रमुख कारण अज्ञानता था । सद्ज्ञान के अभाव में मिथ्यावाद, अन्धविश्वास, गुरुडम, जातिभेद और अराजकता ने मानव समाज को खोखला कर रखा था । स्वामी दयानन्द जी से पहले किसी ने भी इस निकृष्ट परिस्थिति से निबटने का साहस नहीं किया । बचपन से ही स्वामी जी को शिक्षा के महत्व का पता चल चुका था क्योंकि उनके पिता कर्सन जी ने उनको पढ़ाने लिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। बचपन की इस शिक्षा के प्रभाव से ही उनकी बुद्धि की पहुँच मेधा बुद्धि स्तर तक आ गई थी। तभी तो इतनी कम आयु में उनको बोध प्राप्त हुआ ।

बोध प्राप्ति के बाद, मूलशंकर के रूप में, उनका सबसे महत्वपूर्ण प्रयास था सच्ची शिक्षा ग्रहण करके समस्त मानव का कल्याण करना । ईश्वर की कृपा से वे गुरु विरजानन्द के सम्पर्क में आये और स्वयं गूढ़ शिक्षा प्राप्त की। इसी शिक्षा के बल पर स्वामी जी ने ईश्वर प्रदत सच्चे ज्ञान, अर्थात् वेद के शुद्ध एवं सही ज्ञान के प्रकाश से सारे विश्व को ज्योतिर्मय बनाने का पूरा प्रयास किया । मनुष्य योनि में जन्म लेने मात्र से कोई मनुष्य नहीं बन जाता है। ऋग्वेद के **मनुर्भव** आदेश को शिरोधार्य करने के लिए परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य को तीन शक्तियाँ दी हैं जिनसे वह मनुष्य कहलाने योग्य बन सकता है – ज्ञान, मस्तिष्क और वाक् । ज्ञान प्राप्त करने के लिए ईश्वर ने मनुष्य को पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ दी हैं, प्राप्त ज्ञान को संचित करने के लिए मस्तिष्क दिया है और उस ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए वाक् शक्ति दी है । स्वामी जी ने मनुष्य के इस **मनुर्भव** लक्ष्य की पूर्ति के लिए सच्ची विद्या को ग्रहण करना अनिवार्य बताया। प्रत्येक मनुष्य को सुशिक्षित होना जन्मसिद्ध कर्त्तव्य और अधिकार सिद्ध किया । अपने वेद प्रचार कार्य के अन्तर्गत स्वामी जी का पहला प्रयास समाज को शिक्षित बनाना था।

सत्यार्थप्रकाश के दूसरे एवं तीसरे समुल्लास में स्वामी जी ने बच्चों की शिक्षा प्रणाली का गहरा उल्लेख किया है । उन्होंने बताया कि मनुष्य की शिक्षा जन्म से पहले, अर्थात् माँ के गर्भ से ही आरम्भ हो जानी चाहिए । इसके लिए उन्होंने पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कारों का विधान बताया है जिनके अन्तर्गत बच्चे के शारीरिक, बौधिक और आध्यात्मिक विकास की ओर भावी माता-पिता का ध्यान केन्द्रित किया जाता है । बच्चे का जन्म होते ही जातकर्म संस्कार का विधान है । पिता जब बच्चे के कान में **'वेदोऽसीति'** बोलता है तब आशय यही होता है कि हे बालक, तुम्हारा गुप्त नाम वेद है अर्थात् तू सच्चे ज्ञान का भण्डार है । बच्चे को ऐसा बनाने के लिए ही माता-पिता के ऊपर बच्चे की पूर्णरूपेण शिक्षा की जिम्मेदारी आ जाती है ।

शिक्षा भी ऐसी होनी चाहिए जो आगे चलकर बच्चे को मानवता के साँचे में ढाल सके । स्वामी जी स्वयं लिखते हैं – *'बालकों की माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावे'* । मनुष्य की शिक्षा केवल प्रमाण-पत्र प्राप्ति तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए बल्कि वह ऐसी शिक्षा ग्रहण करे जिससे उसके व्यक्तित्व, चरित्र, गुण और सद्भावनाओं का निर्माण हो । आगे स्वामी जी फिर लिखते हैं – *'यही माता-पिता का कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपनी सन्तानों को तन-मन-धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना'* । स्वामी जी ने प्रमाणित किया कि सद्ज्ञान प्रकाश है और अज्ञानता अन्धकार है ।

स्वामी जी की शिक्षा प्रणाली शास्त्रोक्त एवं एक सभ्य समाज के निर्माण की दिशा में ही थी। इसीलिए उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में संकेत दिया है कि पाँच वर्ष की आयु के बाद लड़के को पुरुष अध्यापक और लड़की को कोई स्त्री ही पढ़ावे । लड़के और लड़की की पाठशाला के बीच दो कोस, लगभग सात किलोमिटर की दूरी हो । एक दूसरे के सम्पर्क में वे कभी भी न आवें । परन्तु आजकल लड़के और लड़की की पाठशाला की दूरी तो दूर, वे एक ही पाठशाला में साथ पढ़ते हैं। इससे बुद्धि का भ्रष्ट होना स्वाभाविक है और सभ्य समाज का निर्माण असम्भव है ।

पढ़ाने वाले शिक्षक के विषय में भी स्वामी जी ने काफ़ी सख़्ती दिखाई है। उनका कहना है कि अध्यापक को विद्या प्रेमी होना आवश्यक है । वे अच्छे गुणवाले, शीलस्वभावयुक्त, सत्यभाषी, अनुशासन प्रिय और आदर्श हों । देश में अच्छी शिक्षा की व्यवस्था बनाये रखने के लिए राज्य शासकों का योगदान भी अपेक्षित है । स्वामी जी स्वयं लिखते हैं – *'पाँचवे वा आठवे वर्ष के आगे कोई भी माता-पिता अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रखें, उन्हें अवश्य पाठशाला भेजें । जो ऐसा न करे वे राजनियम के अनुकूल दण्डनीय हों ।'*

इस प्रकार स्वामी दयानन्द जी ने शिक्षा प्रदान करने की और शिक्षा ग्रहण करने की एक उत्कृष्ट तथा शास्त्रोक्त पद्धति सामने रखी। अगर संसार के सभी देश सख़्त अनुशासन द्वारा स्वामी जी के शिक्षा सम्बन्धी इन आदर्श आदेशों को अपनाते तो निःसन्देह आज सारा विश्व एक सभ्य और शिक्षित परिवार होता। स्वामी जी ने हमें मार्ग दर्शन तो करा दिया, उस मार्ग पर चलना हम पर निर्भर है । ◘

स्वामी दयानन्द का धार्मिक-सुधार

पंडित धर्मेन्द्र रिकाई, आर्य भूषण

स्वामी दयानन्द ने प्रचलित धर्मों में फैली हुई बुराइयों का कड़ा खण्डन करते थे चाहे वह किसी भी मत हो। अपने महाग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी ने सभी मतों में व्याप्त बुराइयों का खण्डन किया है । उनके समय के सुधारकों से अलग, स्वामी जी का मत शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं था परन्तु आर्यसमाज ने भारत के साधारण जनता को भी अपनी ओर आकर्षित किया।

वेदों को छोड़कर कोई अन्य धर्मग्रन्थ प्रमाण नहीं है – इस सत्य का प्रचार करने के लिए स्वामी जी ने सारे देश का दौरा करना प्रारम्भ किया और जहाँ जहाँ वे गए परम्परा के पंडित और विद्वान् उनसे हार मानते गये। उन्होंने प्रचलित मतों के धर्मग्रन्थों का अध्ययन किया । वे अकेले तीन प्रचलित मतों से जूझते रहे, उन्हें अपमान, कलंक और कष्ट झेलने पड़े। दयानन्द ने बुद्धिवाद की जो मशाल जलाई थी, उसका कोई जवाब नहीं था।

स्वामी जी ने लोगों को समझाया कि मनुष्य का सर्वोत्तम गुरु तो परमात्मा ही है जिसकी शिक्षा में न तो गलती है और न पक्षपात। परमात्मा ने जब मानव को संसार में भेजा तो उसे जीवन-यात्रा का निर्भय मार्ग भी बताया। यह शिक्षा सृष्टि के आरम्भ में दी गई थी जिससे मनुष्य बुद्धि की सहायता से मार्गदर्शन प्राप्त करे । स्वामी जी ने आर्यों को बताया कि संसार में जो ज्ञान और सच्चाई दिखाई देती है उसका आदि कारण परमात्मा ही है क्योंकि वही आदि गुरु है । उस आदि गुरु ने जो शिक्षा दी वह वेद मंत्रों में वर्णित है और वेद ही मनुष्य का सब कुछ है । मनुष्यों को इन वेदों को पढ़ने तथा उनसे शिक्षित होने का अधिकार है । उस आदि गुरु की शिक्षा और उसे ग्रहण करने वालों के बीच में कोई पर्दा नहीं है । मनुष्य और ईश्वर के ज्ञान के बीच में जो कृत्रिम बाधाएँ स्वार्थवश खड़ी की गई थीं उन्हें स्वामी जी ने समाप्त किया और सबको ईश्वरीय ज्ञान की ज्योति दिखाई। लोगों को ज्ञान के उस स्रोत से परिचित कराया जिससे अनेक विज्ञानों की नहरें निकलती हैं। मनुष्य को उस शाश्वत ज्योति की झलक दिखाई दी जिससे संसार के समस्त ज्ञान रूपी दीपक अपना प्रकाश ग्रहण करते हैं और अंधकार को दूर करते हैं । स्वामी जी के जीवन का यह एक महान् कार्य था । हठ और पक्षपात के कारण से जो सर्वसाधारण को वेदों की शिक्षा देने के विरोधी थे तथा स्वयं भी इस ज्ञान से अपरिचित थे। स्वामी जी ने वैदिक ज्ञान से परिचित कराया । यों कहने के लिए सभी कहते थे कि हमारा धर्म वेदों पर आधारित है। ब्राह्मण तो यह बात कहते ही थे किन्तु सच पूछो तो न उन ब्राह्मणों को और न सर्व साधारण को ही इस बात का पता था कि इन वेदों में क्या है तथा उनकी शिक्षा क्या है।

महर्षि दयानन्द ने समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों तथा अंधविश्वासों और रुढ़ियों-बुराइयों को दूर करने के लिए, निर्भय होकर उन पर आक्रमण किया । वे संन्यासी योद्धा कहलाए । उन्होंने जन्मना जाति का विरोध किया कर्म के आधार पर वेदानुकूल वर्ण निर्धारण की बात कही । वे दलित उद्धार के पक्ष में थे। उन्होंने स्त्रियों की शिक्षा के लिए प्रबल आन्दोलन चलाया । उन्होंने बालविवाह तथा सती प्रथा का विरोध किया तथा विधवा विवाह का समर्थन

किया । उनके दार्शनिक विचार वेद के अनुकूल थे। उन्होंने यह भी माना कि जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है तथा फल भोगने से परतन्त्र है । महर्षि दयानन्द सभी धर्म अनुयायियों को एक मंच पर लाकर एकता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होंने दिल्ली दरबार के समय १८७८ में ऐसा प्रयत्न किया था।

उनके अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में उनके मौलिक विचार स्पष्ट रूप से प्राप्त हैं। वे योगी थे तथा प्राणायाम पर उनका विशेष बल था। वे सामाजिक पुनर्गठन में सभी वर्णों तथा स्त्रियों की भागीदारी के पक्ष में थे। राष्ट्रीय जागरण की दिशा में उन्होंने सामाजिक तथा धार्मिक क्रान्ति तथा आध्यात्मिक पुनरस्थान के मार्ग को अपनाया । उनकी शिक्षा सम्बन्धी धारणाओं में प्रदर्शित दूरदर्शिता, देशभक्ति प्रासंगिक तथा युग के अनुकूल है। महर्षि दयानन्द समाज सुधारक तथा धार्मिक पुनर्जागरण के प्रवर्तक थे। उन्होंने न्याय की व्यवस्था ऋषि प्रणीत ग्रन्थों के आधार पर किये जाने का पक्ष लिया ।

बाल्मीकि रामायण में एक कथा आती है कि जब नील इंजीनियर लंका पर चढ़ाई करने के लिए समुद्र पर पुल बाँध रहे थे, तो एक गिलहरी भी अपने छोटे-छोटे पंजों से बालू के कुछ कण उठा उठा कर पुल बनाने वालों के पास पहुँचा रही थी। तब किसी ने गिलहरी से पूछा कि तुम यह क्या कर रही हो। तुम्हारे उस प्रयत्न से पुल बनाने में क्या सहायता मिल रही है। तब उसने जो जवाब दिया, वह हरेक व्यक्ति को याद करना चाहिए। 'गिलहरी ने कहा कि धर्म के काम में जितनी भी सहायता जिससे बन सके, उतनी सहायता करने से कभी पीछे न हटें । यह न समझें कि मेरी छोटी सी सहायता से क्या होगा। परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार धर्म के कार्यों में योग देना ही धर्म है।' ◘

ऋषि बोध और वैदिक धर्म

पंडिता अन्जनी मोहिपथ, शास्त्री

जब-जब इस जगत् में धर्म की हानि होती है, कुरीतियों और कुप्रथाओं का प्रचलन होता है, अधर्म बढ़ जाता है और समाज धाराशायी हो जाता है, तब-तब परम पिता परमात्मा किसी महान् आत्मा को धर्म की स्थापना, समाज सुधार आदि जैसे महान् कार्यों को सम्पन्न करने के लिए इस संसार में भेजता है । त्रेतायुग में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी आये थे, जिन्होंने दुष्ट राक्षसों का विध्वंश कर मानव के आदर्शों को प्रस्तुत किया। द्वापर युग में योगेश्वर श्रीकृष्ण जी ने महाभारत के युद्ध में समस्त दुष्ट और अधर्मी राजाओं का दलन कर धर्म की स्थापना की । उन्होंने अर्जुन के माध्यम से सारे संसार को गीता का पाठ पढ़ाया और इस कलयुग में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का प्रादुर्भाव हुआ, जिन्होंने समाज-सुधार वैदिक धर्म का प्रचार और वेदों का उद्धार किया ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जन्म एक उदीच्य ब्राह्मण श्री कर्षण जी तिवारी के घर गुजरात प्रान्त के मोरवी राज्य के टंकारा नामक गाँव में हुआ । ज्येष्ठ पुत्र का जन्म होने के कारण तिवारी परिवार में आनन्द का वातावरण छा गया । कर्षण जी सामवेदी ब्राह्मण थे और बड़े विद्वान् भी थे। उन्होंने बालक का नामकरण वेदोक्त विधि से करवाया और बालक के दो नाम रखे । एक मूलशंकर और दूसरा दयाल । कर्षण जी दयाल जी के निष्क्रमण, अन्नप्राशन, मुण्डन, उपनयन आदि संस्कार भी करवाये । दयाल जी का पालन-पोषण बड़े स्नेहपूर्ण वातावरण में होने लगा । बचपन में उन्हें अनेक श्लोक और मन्त्र कंठस्य करवाये गये । पिता के संरक्षण में उनकी शिक्षा आरम्भ हुई । पिताने स्वयं उन्हें अक्षरज्ञान कारया ।

चौदह वर्ष की आयु में दयाल जी ने यजुर्वेद के सारे मन्त्र कंठस्थ कर लिये। पिता ने बचपन से शिवजी की महिमा सुना-सुना कर दयाल जी को शिव-भक्त बना दिया। जब कर्षण जी ने देखा कि दयाल जी शैव सम्प्रदाय में दीक्षा लेने योग्य बन गये, तब उन्होंने दयाल जी को महाशिवरात्रि का व्रत रखने का आदेश दिया। माता यशोदा बाई ने विरोध किया, पर कर्षण जी नहीं माने । दयाल जी ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर व्रत रखा। शाम को वे गाँव के पास वाले मंदिर में पिता के साथ गये। उनसे कहा गया कि रात जागरण करना भी पड़ेगा। आधी रात को सभी शिवभक्त सो गये। कर्षण जी की भी आँखें लग गईं। केवल दयाल जी अपनी आँखों पर पानी की छींटे मार-मार

कर रात जागरण करते रहे कि अचानक मूषक वाले दृश्य को देखकर उनको बोध हो गया कि सच्चा शिव कोई और है। उनका अन्तःकरण ज्ञान से प्रकाशित हो गया । उनके मन में प्रश्नों के भवंडर उठने लगे। अपने प्रश्नों का समाधान करने के लिए उन्होंने पिता को जगाया, लेकिन पिता ने जो उत्तर दिया, उन्हें संतुष्टि नहीं हुई। शिवजी के प्रति उनके मन में जो आस्था थी, वह आस्था उठ गई । उसी समय दयाल जी ने सच्चे शिव की खोज करने का दृढ़ संकल्प कर लिया । वे घर लौटे, व्रत तोड़ा और सो गये । उन्हें पिता की डाँट भी सुननी पड़ी, पर उनपर कोई असर नहीं हुआ। महाशिवरात्रि दयाल जी की बोध-रात्रि थी। उसी बोध रात्रि ने दयाल जी की धार्मिक मान्यता की दिशा बदल दी ।

कुछ समय के उपरान्त दयाल जी की छोटी बहन और उनके प्यारे चाचा की मृत्यु हो गई । वे मृत्यु के रहस्य का चिन्तन करने लगे। इससे उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ । वे इस संसार को असार समझने लगे । पिता ने उन्हें विवाह-बन्धन में बाँधना चाहा, लेकिन दयाल जी माता-पिता का परित्याग कर सच्चे शिव की खोज में निकल पड़े । उन्हें सच्चा शिव तो नहीं मिला परन्तु सच्चे गुरु मिले, जिनके चरणों में बैठकर उन्होंने सच्चा ज्ञान प्राप्त किया ।

दयाल जी ने शैव सम्प्रदाय को तिलांजलि दे दी और वैदिक धर्म को स्वीकारा । उस समय पंडितों ने वेद के पन्नों को उलट-पलट कर मन्त्रों का गलत अर्थ निकाला था। वेद नाममात्र रह गये थे। वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे और उन्होंने ब्रह्मचर्य आश्रम से सीधे सन्यास ग्रहण किया। अपने गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी की आज्ञा का पालन करने के लिए वे धार्मिक जंग में उतरे । उन्होंने अपने प्रचार कार्य में मूर्ति पूजा का खण्डन और वैदिक धर्म का मण्डन करना आरम्भ किया। मूर्ति पूजा का खण्डन करने के कारण उनके अनेक विरोधी पैदा हो गये, लेकिन स्वामी दयानन्द जी सत्य पर अटल रहे ।

स्वामी दयानन्द जी ने वैदिक धर्म के प्रचार कार्य को आगे बढ़ाने के लिए आर्यसमाज की स्थापना की । उन्होंने आर्यसमाज में अनेक विद्वानों को संगठित किया। उन्होंने वेद-ज्ञान का प्रकाश फैलाकर भारतीय जनता में नवजागरण पैदा किया। उनकी आँखों पर से भ्रम और अन्धविश्वास की पट्टी खोली । फलस्वरूप लाला लाजपतराय, पं० गुरुदत्त विद्यार्थी, पं० लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द जैसे कर्मठ समाज सेवकों ने वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में अपना सहयोग दिया । वेद-ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। गुरुदेव स्वामी दयानन्द जी और उनके सहयोगी कर्मठ सेवकों की त्याग-तपस्या और महत्ती कृपा से आर्यसमाज जैसी महान् संस्था की स्थापना देश-देशान्तरों में हुई। वेद-ज्ञान का प्रकाश पूरे संसार में फैला । यज्ञ की प्रचण्ड अग्नि फैली । परमात्मा की वाणी वेद-मन्त्रों के उच्चारण से प्रत्येक समाज मन्दिर गूँज उठा । अन्त में काल कराल विष ने स्वामी जी के प्राण हर लिये । आज स्वामी जी हमारे बीच न रहे, परन्तु प्रतिवर्ष महाशिवरात्रि के दिन उनकी स्मृति में ऋषि बोध बड़े भव्य रूप से मनाया जाता है । ◘

Meaning of Stuti, Prārthanā, Upasanā

Stuti (Glorification) consists in praising Divine attributes and powers or in hearing them praised, with the view to fix them in our mind and realize their meaning. Among other things, it inspires us with love towards God.

Prārthanā (Prayer) is praying to God, after one has done his utmost, for the gift of highest knowledge and similar other blessings which result form union with Him. It creates humility, etc. (in the mind of the devotee).

Upasanā (Communion) consists in comforming ourselves, as far as possible, in purity and holiness to the Divine Being, and in feeling the presence of the Deity in our heart by the realisation of His All-pervading nature through the practice of Yoga which enables one to have direct cognition of God. Upasanā serves to extend the bounds of our knowledge.

Satyārtha Prakāsh (Maharshi Dayanand Saraswati)

स्वामी दयानन्द का सुधार-कार्य

पंडिता राजवंश सोलिक, शास्त्री

स्वामी दयानन्द सरस्वती से पूर्व कुछ लोगों ने समाज एवं राष्ट्र सुधार का आन्दोलन आरम्भ किया था। उन सब में सबसे प्रसिद्ध नाम राजा राममोहन राय का था। वे विद्वान् और बुद्धिमान् थे। अपनी विद्या के बल पर उन्होंने विदेशी मिशनरियों का विरोध किया था।

उन्होंने उपनिषदों का अंग्रेज़ी अनुवाद किया और बताया कि अनेक देवी-देवताओं की पूजा हिन्दू-धर्म का सच्चा स्वरूप नहीं है। अविद्या के कारण अज्ञानी हिन्दुओं ने इसका प्रचलन किया । बाल-विवाह और सती प्रथा के विरुद्ध भी आन्दोलन चलाया, परन्तु उस समय पंडितों ने उनका बहुत विरोध किया । उस समय कानून ब्रिटिश सरकार बनाती थी और उन्हीं अंग्रेज़ों की सहायता से राजा राममोहन राय ने कानून द्वारा सती प्रथा बन्द करवा दी और यह काम ईसाई अंग्रेज़ों की सहायता से हुआ न कि हिन्दू और अपने देश-वासियों की सहायता से ।

विवश होकर राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना की। ब्रह्म समाज एक प्रभावी आन्दोलन था, परन्तु यह केवल बंगालियों तक ही सीमित रहा । नये युग के लाने में राजा राममोहन राय का विशेष योगदान था, परन्तु यह केवल ऐतिहासिक घटना बन कर रह गई। उनसे पहले भी हिन्दुओं ने कई आन्दोलन चलाए, पर वे किसी सुदृढ़ नींव पर खड़े नहीं थे, इसलिए उनको सफलता नहीं मिली । इन आन्दोलनों के चलाने में गुरु गोविन्दसिंह, राणा प्रताप, और छत्रपति शिवाजी आदि अद्वितीय पुरुष हुए, जिन्होंने हिन्दुओं के गले से दासता की श्रृंखला उतारने का प्रयत्न किया । इन तीनों महापुरुषों पर भारतवर्ष को गर्व था। परन्तु इनका प्रयास केवल राजनैतिक प्रयास था। इनमें मानसिक दासता को दूर करने का कोई उपाय ही नहीं था। शस्त्र का उत्तर शस्त्र से दिया गया, पर हिन्दू धर्म के रूप में कोई परिवर्तन नहीं आया । दूसरी ओर, गुरु नानक जो सिक्खों के नेता थे, उन्होंने मस्तिष्क से काम लिया था। उनके आन्दोलन में आन्तरिक सुधार की गुंजाइश थी। उनकी शिक्षाओं से भीतरी सुधार की प्रेरणा प्राप्त होती थी।

जब स्वामी दयानन्द जी गुरु विरजानन्द से आशीर्वाद लेकर कार्यक्षेत्र में उतरे, तब आर्य जाति की दशा मुक्त कण्ठ से चिल्ला-चिल्ला कर कह रही थी कि मुझे एक वैद्य की आवश्यकता है। भारत देश उस समय अज्ञान, पराधीनता और दुखों के कारण सर्पों और काँटेदार झाड़ियों से भरे हुए खाण्डव वन के समान दुर्गम और बीहड़ हो रहा था। उसे आवश्यकता थी एक अर्जुन की, जो एक ओर अरणियों की रगड़ से आग निकालकर दावानल को प्रज्वलित करे और दूसरी आग बुझाने का यत्न करने वाले असुरों के आक्रमणों का उत्तर दे सके । आर्य जाति उस समय एक निर्भीक सुधारक को बुला रही थी। जब स्वामी दयानन्द जी आए तब उनके पास संस्कृत व्याकरण और दर्शनों का पाण्डित्य था। अखण्ड ब्रह्मचर्य, उत्साह और व्याख्यान शक्ति के गुण विद्यमान थे। विद्वानों, साधुओं और अलग-अलग पन्थों की दशा देखकर निश्चय हो चुका था कि धर्म की दशा बिगड़ी हुई है । सुधार करने और विशुद्ध धर्म का प्रचार करने की अभिलाषा विद्यमान थी। एक सुधारक में जिन गुणों की बीज रूप में आवश्यकता होती है, वे स्वामी दयानन्द में विद्यमान थे। जब उन्होंने क्षेत्र में प्रवेश किया तब उनकी सारी दृष्टि देश के इतिहास पर थी। उन्होंने पूर्वजों की सफलताओं और असफलताओं पर विशेष अध्ययन किया। असफलताओं का इतिहास में विशेष भाग होता है, क्योंकि इतिहास में राजा महाराजाओं की सफलता, उनकी चरित्रता और अच्छे गुणों का ही उल्लेख होता है । असफलताओं और कमज़ोरियों को ढाँप दिया जाता है । महर्षि दयानन्द जी का मानना है कि यदि आप इतिहास से लाभ उठाना चाहते हैं तो उन कमियों का अध्ययन कीजिए, जिनके कारण सफलताओं में बाधा उत्पन्न हुई

है । स्वामी दयानन्द ने अपने पूर्वजों के दोषों पर दृष्टि डाली और बड़ी सावधानी से उनका अध्ययन किया और दोषों से बचने का प्रयत्न किया ।

स्वामी दयानन्द के आविष्कारों में सबसे पहली बात यह थी कि वे शारीरिक दासता के आरम्भ होने से पूर्व मानसिक दासता का प्रारम्भ होना मानते थे। उनके विचार से मानसिक दासता के दूर होते ही शारीरिक दासता समाप्त हो जाती है। अतः मानसिक दासता को शारीरिक दासता से अधिक भयंकर मानते थे। जब अमेरिका वालों ने दासता को अन्त करने का विधेयक पारित किया था तो सबसे अधिक आपत्ति दासों को ही थी। पीढ़ियों से उनके मस्तिष्क दास हो चुके थे। दासता उनके स्वभाव का एक अंग बन गई थी। उनकी समझ में यह बात नहीं आती थी कि यदि कल हमको स्वतन्त्र कर दिया गया तो हमें रोटी कौन देगा। हमारी रक्षा कौन करेगा ? अब तक यह प्रथा थी कि जब एक दास को दूसरा स्वामी मोल लेता था तब उसके पालन का सारा उत्तरदायित्व पहले स्वामी से हटकर दूसरे स्वामी पर आ जाता था। दास केवल उसकी आज्ञा का पालन करता था, उसकी रोटी का प्रबन्ध हो जाता था, बस इतने ही में वह प्रसन्न हो जाता था। यही दास देशों की भी दशा थी, वे सदा दूसरे देश पर निर्भर रहते थे।

पहले तीन वर्षों तक स्वामी जी ने सुधार का काम किया । वह उस भारी और सर्वतोगामी सुधार का प्रारम्भिक पड़ाव था, जो कुछ वर्ष पीछे भारत के विशाल कार्य को प्रकम्पित कर देने वाला था। इस प्रारम्भिक कार्य में भी उन सब गुणों को बीज रूप में पाते हैं, जो पीछे से वृक्षरूप में परिणत होकर सफलता के साधन हुए । सुधार का प्रारम्भ एक ईश्वर की पूजा से हुआ। महर्षि का मानना था कि मूल धार्मिक विचारों में प्रथम स्थान ईश्वर-विश्वास का है ।

गोरक्षा स्वामी जी का दूसरा लक्ष्य था। उन्होंने असिस्टेंट कमिश्नर से मिलकर गोरक्षा का प्रश्न उठाया । प्रारम्भ में वे अपने विचारों को प्रकट करने के लिए, व्याख्यान देते थे, विज्ञापन निकालते थे और शास्त्रार्थ के लिए ललकारते थे। इस प्रकार एक प्रचारक को जिन तीन उपायों से काम लेना चाहिए, प्रारम्भ से ही ऋषि दयानन्द ने अंगीकार कर लिये थे। आगे चलकर इन्हीं साधनों का विकास होता गया। यहाँ तक कि स्वामी जी वाणी, लेख और शास्त्रार्थ, इन तीन प्रकार की युद्ध-सामग्री के पूरे अधीश्वर हो गये ।

अठारह सौ सड़सठ के अप्रैल मास में हरिद्वार में कुम्भ का बड़ा मेला था। देश भर के साधु-संन्यासी इस मेले में एकत्र हुए थे। हिन्दू जाति की भलाई और बुराई, सुन्दरता और कुरूपता दोनों का स्पष्ट रूप में दर्शन करना हो तो पाँच-दस दिन इस विख्यात समारोह की सैर कर लेना पर्याप्त है । हिन्दू जाति श्रद्धामयी है । उस श्रद्धा का कुम्भ के मेले में मानो समुद्र उमड़ पड़ता था, जिसे हिन्दू धर्म की गिरी हुई दशा देखनी हो, वह आँखें खोलकर एक बार हरिद्वार उस कुम्भ की सैर कर आता था। जहाँ एक ओर कुम्भ पर एकत्र हुआ जन-समूह देश-भर के हिन्दुओं की मौलिक एकता को सूचित करता था, वहाँ साथ ही वह हिन्दुओं की नासमझी और अन्धी श्रद्धा में एकता को भी सूचित करता था।

स्वामी दयानन्द जी कुम्भ स्नान से एक मास पूर्व ही हरिद्वार पहुँच गए और सप्तश्रोत के पास गंगा की रेती में कुछ छप्पर डालकर मध्य में पाखण्ड-खण्डिनी झंडी गाड़ दी । सप्तश्रोत में खड़े हुए युवक सुधारक दयानन्द के सामने जो परस्पर विरोध उपस्थित हुआ होगा, उसकी कल्पना की जा सकती है । एक ओर संसार के अनूठे हिमालय और गंगा का प्राकृतिक चित्र, दूसरी ओर अज्ञान और छल के मानुषिक चमत्कार। क्या यह आश्चर्य और खेद उत्पन्न करने वाला दृश्य नहीं था। स्वामी दयानन्द ने मेले में एकत्र हुए हिन्दू समाज को देखा और सम्पूर्ण समाज को एक ही बीमारी का शिकार पाया । उन्होंने देखा कि क्या शैव, क्या वैष्णव, क्या संन्यासी, क्या वैरागी, सब एक ही धुन में मस्त थे। सब एक ही लोक के राही थे। सुधार की प्रारम्भिक दशा में स्वामी जी ने शैवों को वैष्णवों से कुछ ऊँचा ठहराया था, पर कुम्भ में देखा कि सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं । न वह पूरे ज्ञानी, न यह अधिक अज्ञानी थे। जो थोड़ा-सा साम्प्रदायिक भेद हृदय में विद्यमान था। गंगा के निर्मल जल से वह भी धुल गया ।

कुम्भ के समारोह में शास्त्र-पारंगत स्वामी दयानन्द की प्रसिद्धि शीघ्र ही फैल गई । गृहस्थ और साधु लोग निडर सुधारक के तेजस्वी भाषण सुनने के लिए आने लगे । कई विद्वानों ने स्वामी जी की योग्यता की परीक्षा करके उत्सुकता को दूर किया । यश के विस्तार के साथ-साथ स्वामी जी की दृष्टि का क्षेत्र भी विस्तृत होने लगा । केवल शास्त्रार्थ की तरह डेरे पर प्रचार करने की रीति को छोड़कर स्वामी जी नियमपूर्वक सभाएँ करने और उनमें व्याख्यान देने की पद्धति का अनुसरण करने लगे। स्वामी जी अब तक केवल संस्कृत में भाषण देते थे। अब हिन्दी में भी देने लगे । कौपीन छोड़कर स्वामी जी पूरे शरीर में वस्त्र पहनने लगे। उसी समय स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश भी लिखा, जिससे प्रचार-कार्य

में अधिक विस्तृत और लोक उपयोग का साधन मिला । १८७२ ई० अठारह सौ बहत्तर में स्वामी जी कलकत्ता पहुँचे, जहाँ वे ब्रह्म समाज के संस्थापकों, केशवचन्द्र सेन और हेमचन्द्र चक्रवर्ती से मिले । केशवचन्द सेन ईसाईयत से प्रभावित थे, परन्तु स्वामी जी से मिलने पर उनका झुकाव तप और योग की ओर हुआ। उन्हीं की सलाह पर स्वामी जी कौपीन छोड़कर पूरा वस्त्र पहनने लगे और संस्कृत के अलावा हिन्दी में भी भाषण देने लगे थे।

स्वामी जी ने विधर्मियों का खण्डन प्रारम्भ कर दिया, क्योंकि उन्होंने देखा कि दूसरी जातियों के मत आर्य जाति के लिए खतरा था। उस समय स्वामी जी के अनुयायियों की संख्या हज़ारों से अधिक हो चुकी थीं। सुधरे हुए विचारों के लोग देश भर में फैले हुए थे। वे लोग बिखड़े हुए फूलों की भाँति इधर-उधर फैले हुए थे उनकी माला तैयार नहीं हुई थी। सब के संगठित न होने से शक्तियाँ बहुत फैली हुई थी, उनका कोई केन्द्र नहीं था। इस अभाव को स्वामी जी चिरकाल से अनुभव कर रहे थे। बम्बई में बहुत से आर्य पुरुष स्वामी जी के पास आए और उन्होंने आर्यों का एक संगठन बनाने के विषय में प्रार्थना की । देर तक विचार होता रहा । विशेष चिन्ता नाम के विषय में थी। स्वामी जी ने 'आर्यसमाज' नाम उपस्थित किया जो आर्य पुरुषों के हृदय के अनुकूल था। स्वामी जी आर्य जाति के सुधारक और रक्षक थे । वे आर्यत्व के पोषक और प्रतिनिधि थे। 'आर्यसमाज' यह नाम इस बात को सूचित करता है । यह नाम सभी आर्य पुरुषों को ठीक जँचा और आर्यसमाज बनाने की तैयारियाँ होने लगीं । हरेक समाज का कोई न कोई आधार चाहिए। आर्यसमाज का मूल 'वेद' है, परन्तु अभी तक ये अगम्य सागर थे, जिन तक पहुँचना किसी आर्य पुरुष के वश में नहीं था। अभी वह समय नहीं आया था कि वेदों के आधार पर आर्यसमाज की स्थापना कर दी जाती । आधार में रखने के लिए एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता थी, जो लोगों की समझ में आ सके, जिससे प्रत्येक पुरुष 'आर्यसमाज' में आने से पूर्व यह जान सके कि किन सिद्धान्तों को मानने वाला पुरुष आर्यसमाज में प्रविष्ट हो सकता है । सौभाग्य से उस समय राजा जयकृष्णदास जी की प्रार्थना पर स्वामी जी का महान् ग्रन्थ, 'सत्यार्थप्रकाश' तैयार हो चुका था।

समय अनुकूल था, पर स्वामी जी को तीन महीने के लिए प्रचारार्थ गुजरात जाना पड़ा। २४ नवम्बर अठारह सौ चौहत्तर में यह परामर्श आरम्भ हुआ था। उस समय लगभग ६० सज्जनों ने सभासद बनने की प्रतिज्ञा की थी। जब स्वामी जी गुजरात से वापस आए तब आर्यसमाज का प्रस्ताव अधिक उत्साह से उठाया गया। इस बार शीघ्र ही सफल हो गया । राजमान्य राजश्री पानाचन्द्र आनन्द जी सर्वसम्मति से नियमों का मसविदा बनाने के लिए नियत किये गए । उसके बनाए हुए मसविदे पर विचार करके चैत्र सुदी १ वि० सं० १९३२ ई०, दस अप्रैल अठारह सौ पचहत्तर के दिन चिरगाँव में डा० मानिकचन्द जी की वाटिका में, नियमपूर्वक आर्यसमाज की स्थापना हुई । आरम्भ में २३ नियम बनाए गए । वर्तमान १० नियम लाहौर में पीछे से बनाए गये थे। प्रारम्भिक २३ नियमों में उद्देश्य, नियम, उपनियम सब कुछ आ गया है । यह पहला अवसर था जब कि स्वामी दयनन्द जी जिन सिद्धान्तों का प्रचार करना चाहते थे। उनके मानने वाले एक सूत्र में पिरोए जाकर संगठित हुए । ◘

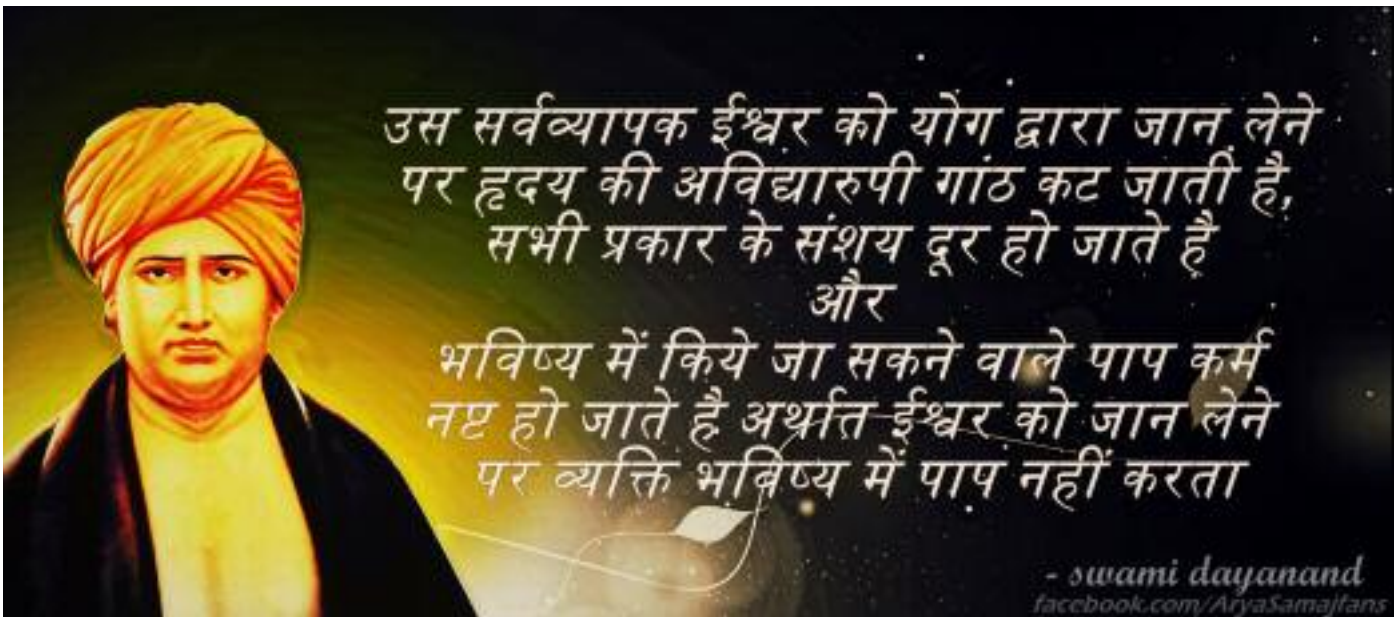

युवा पीढ़ी के लिए

महर्षि दयानन्द की अमर कहानी

पंडित कविराज खेदू, शास्त्री

महाभारत काल के बाद संसार में यदि वेदों के सच्चे भक्त देखने हों तो हमें एक ही नाम दृष्टिगोचर होता है और वह है – 'स्वामी दयानन्द सरस्वती'। महर्षि दयानन्द वेदों के मर्मज्ञ, वेदों के प्रचारक, सच्चे योगी व देश-सुधारक थे। उनकी तुलना में महाभारत के पश्चात् कोई दूसरा विद्वान् नहीं हुआ है ।

स्वामी जी का जन्म मछुकांटा नदी के किनारे मोरवी रियासत के 'टंकारा' गाँव में हुआ । माता का नाम शोभा बाई, पिता का नाम कर्सन जी तिवारी था। वे उदीच्य ब्राह्मण थे। जन्मकाल था सन् १८२४ । उनका बचपन का नाम मूलशंकर था। मूलशंकर के दो भाई और एक बहन भी हुए, जो अल्पकाल में ही मृत्यु की गोद में समा गए।

मूलशंकर तीव्र बुद्धि वाले थे, आठ साल में उनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और शीघ्र ही उन्होंने संध्या, गायत्री मंत्र आदि कण्ठस्थ कर लिया था। चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने यजुर्वेद संहिता कण्ठस्थ कर व्याकरण का भी ज्ञान प्राप्त कर लिया था।

जब मूलशंकर चौदह वर्ष के थे तब उनके पिता जी ने उनको शिवरात्रि के अवसर पर व्रत-उपवास एवं रात्रि जागरण करने को कहा। बालक मूलशंकर ने व्रत रखना न चाहा । उनकी माता जी ने समर्थन करते हुए कहा कि अभी तो मूलशंकर छोटा है, उससे यह व्रत नहीं रखा जाएगा। परन्तु शिव भक्त पिता के सामने कोई भी तर्क काम न आया। पिता ने बेटे को शिव-महिमा के बारे में अनेक प्रभावशाली कथाएँ सुनायीं, जिन्हें सुनकर बालक मूलशंकर व्रत रखने के लिए मान गये ।

सायंकाल होने पर मूलशंकर अपने पिता जी के साथ मंदिर जा कर पूजा में बैठ गये । पूजा समाप्त हुई मध्य रात्रि होते-होते सभी भक्त गहरी निद्रा में डूब गये। बालक मूलशंकर अपनी आँखों पर पानी के छींटे मार-मार कर जागते रहे, क्योंकि उनको उस शिव के दर्शन करने थे, जिसके बारे में उनके पिता ने कई कथाएँ सुनाई थीं।

कुछ समय बाद बालक मूलशंकर देखते हैं कि चूहे शिव-लिंग के पास रखे प्रसाद, फल आदि को खाकर ऊधम मचाने लगे और शिव-लिंग पर चढ़कर, उसे अपवित्र भी कर दिया। बालक ने सोचा क्या यही शिव हैं, जिनके बारे में पिता जी ने सुनाया था। उन्होंने अपने पिता को उठाकर सारी घटना सुनायी और घर की ओर निकल पड़े । उन्होंने ठान ली कि अगर सच्चे शिव कैलाश पर्वत पर हैं तो वहीं पर जाकर दर्शन करेंगे ।

जब मूलशंकर सोलह साल के हुए तभी उनकी १४ वर्षीया बहन रोग-ग्रस्त होकर मृत्यु के (जाल) में समा गयी। यह देख मूलशंकर सोचने लगा कि क्या मुझे भी एक दिन मरना है ?

तीन वर्ष बाद उनके प्रिय चाचा जी की भी मृत्यु हो गयी। मूलशंकर को यह विश्वास हो गया कि एक दिन सब को इस संसार को छोड़कर जाना होगा। उन्हें इस मृत्यु के बारे में जानने की तीव्र इच्छा होने लगी । उन्होंने आस-पास के पण्डितों तथा विद्वानों से अपना शंका-समाधान करना चाहा, पर उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई ।

मूलशंकर ने विद्याध्ययन हेतु काशी जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु एक मात्र सन्तान होने के कारण माता-पिता से अनुमति नहीं मिली । माता-पिता ने सोचा इकलौता पुत्र है, वैरागी बन गया तो हाथ से छूट जाएगा, क्यों न इसका विवाह कर दिया जाए। जब मूलशंकर को इस बात का पता चला तो घर से भागने का निर्णय कर लिया, क्योंकि उनके जीवन का लक्ष्य ईश्वर को जानना था। पहली बार घर से भागते समय मूलशंकर को कुछ ठग साधुओं से पाला पड़ा, जिन्होंने उनके सारे आभूषण और वस्त्र ले लिये ।

उसके बाद मूलशंकर ने लाला भक्त के आश्रम में ब्रह्मचर्य का व्रत लिया और 'शुद्ध चैतन्य' नाम से प्रसिद्ध हुए। किसी वैरागी के द्वारा श्री कर्सन जी को पता चल गया कि उनका बेटा सायला में है। वे चार सिपाहियों को लेकर गये और उन्हें बलपूर्वक घर लाये। श्री कर्सन जी ने चौबीसों घण्टे मूलशंकर को सिपाहियों की निगरानी में रखा। मूलशंकर बहुत ही मेधावी बालक थे। सिपाहियों को चकमा देकर वहाँ से भाग निकले ।

चैतन्य ब्रह्मचारी को तो मृत्यु से छूटने का उपाय जानना था। जब किसी ने उन्हें बताया कि योग ही मृत्यु से बचने का एकमात्र उपाय है तो उन्होंने तन-मन से योगाभ्यास किया ।

आगे चलकर नर्मदा नदी के तट पर उन्होंने स्वामी पूर्णानन्द जी द्वारा संन्यास की दीक्षा ली और उनका नाम 'स्वामी दयानन्द सरस्वती' हुआ। दीक्षा प्राप्त करने पर भी उनकी ज्ञान प्राप्त करने की तृष्णा शान्त न हुई। स्वामी दयानन्द नवम्बर १८६० को दण्डी स्वामी विरजानन्द जी के यहाँ मथुरा पहुँचे । वहाँ पर उन्होंने लगभग ढाई वर्ष तक रहकर अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि अनेक शास्त्रों का गहरा अध्ययन किया ।

विद्याध्ययन के समाप्त होने पर स्वामी दयानन्द ने गुरु विरजानन्द को दक्षिणा रूप में कुछ लौंग भेंट किया । दण्डी जी महाराज ने लौंग स्वीकार करते हुए उनको यह आदेश दिया कि 'शिष्य, देश भर मैं वैदिक ज्ञान फैला कर अविद्या रूपी अंधकार को मिटाओ, सत्य धर्म को स्थापित कर मत-मतांतरों के भेद को मिटाओ और केवल आर्ष ग्रंथ अर्थात् ऋषि कृत ग्रन्थों का प्रचार करो, जिनमें ईश्वर तथा वेद की निन्दा नहीं है ।

गुरु से आदेश प्राप्त कर स्वामी दयानन्द कर्म क्षेत्र में कूद पड़े । जब स्वामी जी हरिद्वार के कुम्भ मेले में पहुँचे तो देखा कि हिन्दू समाज पाखंड रोग से ग्रस्त था। उन्होंने वहीं पर पाखण्ड खंडिनी पताका फहरा दी। वहाँ पर उन्होंने काशी के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विशुद्धानंद से शास्त्रार्थ कर उन्हें परास्त किया ।

स्वामी दयानन्द ने भारत के अनेक स्थानों पर शास्त्रार्थ किये । महर्षि दयानन्द जी ने १० अप्रैल १८७५ को मुंबई में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना की और कुछ काल में भारत वर्ष में आर्यसमाज जगह-जगह पर स्थापित होने लगा ।

आर्यसमाजों के फैलते ही सत्य का प्रकाश फैलते गया, फैलते गया। कुछ दुष्ट पुरुष सत्य ज्ञान से घृणा करते थे, क्योंकि उनकी जीविका लोगों को ठगने से ही प्राप्त होती थी। ऐसे ही लोगों ने महर्षि जी को सत्रह बार विष दिया, परन्तु स्वामी जी अपने योग बल से विष को देह से बाहर कर देते थे।

स्वामी जी के पराक्रम को देखकर दुष्ट लोग रुष्ट होकर अपनी संख्या को बढ़ा कर स्वामी जी के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगे। २६ सितम्बर १८८३ को अली मर्दान और नन्ही जान ने स्वामी जी के रसोइये पंडित जगन्नाथ को बहुत सारा प्रलोभन देकर अपने साथ मिला लिया और उस रात्रि में रसोइये ने ऋषि को सीस और विष से मिला हुआ दूध पिला दिया ।

कुछ घण्टे बाद विष का असर शुरू हो गया, कंठ सूखने लगा, तीन बार वमन भी हुआ। स्वामी जी योग क्रिया से विष को बाहर निकालने में असमर्थ हो गये, क्योंकि विष के साथ-साथ पूरे शरीर में ज़हर फैल गये थे। डा० सूर्यमल को बुलाया गया, पर चिकित्सा असफल हो गयी।

स्वामी जी को पता चल गया कि उनके रसोइये जगन्नाथ ने प्रलोभन में आकर उनको विष दिया तो उसी के हित के लिये उन्होंने कुछ पैसे देकर नेपाल चले जाने को कहा, क्योंकि यहाँ पर उसकी जान को खतरा था।

अनेक उपचार के बाद भी चिकित्सा असफल रही । ३० अक्टूबर दोपहर को लाला जीवनदास और गुरुदत्त विद्यार्थी जब वहाँ पहुँचे तो देखते हैं कि स्वामी जी के पूरे शरीर में फोड़े पड़े हुए हैं और उनके मुखड़े पर दर्द का कोई भी निशान नहीं था। उन्होंने स्वामी जी से पूछा – 'महाराज आप इस समय कहाँ है?' स्वामी जी ने उत्तर दिया, 'ईश्वरेच्छा में' ।

काफ़ी लोग इकट्ठा हो चुके थे। लगभग साढ़े पाँच बजने को थे। स्वामी जी ने कहा - 'जो आर्य जन यहाँ आये हैं, उन्हें बुलाकर हमारे पीछे खड़ा कर दो । सम्मुख कोई खड़ा न रहे।' और फिर स्वामी जी ने कहा – 'चारों ओर के द्वार और खिड़कियाँ खोल दो।' फिर स्वामी जी ने पक्ष, तिथि और वार आदि पूछे सो उन्हें बताये गये। उसके उपरान्त स्वामी जी ने ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना की और थोड़े समय के लिए समाधिस्थ हो गये। कुछ देर बाद उन्होंने आँखें खोलीं और कहने लगे – 'हे दयामय! हे सर्वशक्तिमान ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा, तूने अच्छी लीला की।' इन शब्दों को कहते हुए स्वामी जी कार्तिक अमावस्या (दीपावली) की संध्या बेला में अपने प्राण त्याग दिये । ◘

Rishi Dayanand's Views on Education

Prof. Soodursun Jugessur, CSK, GOSK, Arya Bhushan, Dharma Bhushan

On the occasion of Rishi Bodh it is opportune to see what are the Rishi's views on education and how they can impact on our society. Rishi Dayanand's views on Education are enshrined in Chapter 3 of the Satyārtha Prakash, but it can be said that all the other chapters of the book have elements of education meant for parents, the common citizen, the stages of a person's life, the rulers and decision makers.

New insight into the Gurukul system

Essentially Swamiji emphasized the Gurukul system where eternal universal Vedic values form a substantive segment of the syllabus. We should take much from what is traditionally prescribed in the Gurukul system, like the concept of Bramhacharya way of life, duties of a Grihastha, Vanprastha and Sanyāsa and adapt the best elements with modern pedagogy to meet the needs of the present and future generations, especially in the science and technology-based sustainable development. There is an urgent need for our eminent scholars on Vedic way of life to network with local Ministries and other stakeholders for the development of new syllabi with a view to incorporate the Universal Vedic values as well as the views of global spiritual leaders and come up with an acceptable formula for the majority.

Adapting to modern circumstances

A new generation of leaders, well versed both in the Arsha literature and modern science, should emerge. A blend of old and modern concepts, taking the best of both, should be espoused. Too much of the old tends to stratify the minds while too much of the new tends to encourage agnosticism and materialism. A right balance has to be found. Otherwise we cannot influence global thinking and a new development agenda with sustainable development.

Blindly following western educational agenda cannot but bring social and global havoc as is visible today. Global warming and climate change, recurrent economic crises, increasing cybercrimes and terrorist attacks are the order of the day, while timeless and universal Vedic values are being sacrificed at the altar of mammon. The Vedic values cater for life in harmony with nature, without disturbing the balance that is essential for sustainability. Adapting to modern times is not to be equated as diluting the essentials of these values. Scientific discoveries are changing the world vision and we should keep our windows open.

Teachers, Preachers, Parents

The education of our Teachers, Purohits and Preachers, including many of the Acharyas need to be reviewed with the above in mind. They are the guarantors of value systems that can sustain our appropriate development. As our Vedas and most of the Vedic literature are in Sanskrit, crash courses in Sanskrit would empower the common man to better follow the meaning of the Vedic mantras. Mere repetition of the mantras does not make us better citizens or Aryas. In parallel we have to train them to the use of the Internet so that they can communicate better with the outside world. International, regional and national training institutions need to be developed with funding from donors. Foundations have to be established so as to ensure continuity of operations.

Parents should be re-educated to adopt new ways of parenting that can ensure a happy family.

Traditional ways have led to generational conflicts and family unity and harmony are fast decreasing. Social violence, crimes, drugs and health problems are on the increase. The Sukhi Parivaar (www.sukhiparivaar.org) program developed in Mauritius, can be a starting point for such education where the men, women and children are all participants and stakeholders.

Our new educational system should cater for the different emotional and general intelligence quotients (EQ and IQ) of the children, adolescents and adults. Besides the regular literacy programs, technical literacy along with value-based education have to be promoted. The values will make the students better appreciate their place in this world and in the universe. With globalization and the rapid movement of people, new ideas are taking roots, and often these are not in line with universal values. The traditional structure of the families is changing, and sticking to the old can only stratify our development. But we must always be prepared to accept the best and reject the rest.

Conclusion

There is need for all concerned stakeholders to sit down and chalk out a path. A seminar would be the appropriate forum to exchange views and find the best way ahead. As a progressive organization, Arya Samaj should lead the way! ◘

Tribute of Sri KM Munshi to Maharshi Dayananda Saraswati

Of the modern Masters, Swami Dayananda Saraswati is the first in time.

He had no attachment, no personal life, no fear. He braved poison, snakes and the sword of an assassin. He faced abuse, calumny and violence with undaunted courage, a spotless life, and the concentrated vigour of a complete consecration to his mission. He had no ill-intention, but his flaming indignation was like scorching lava, which burnt up untruth and things which stifled the soul of India.

The Swami's wonderful gifts were brought under the direction of one idea, to restore the primitive Aryan strength and virility to Indian Culture. He was learned beyond the measure of man. He was a master of thundering eloquence. Ceaselessly he worked, travelling all over India, radiating intense creative vigour; a powerful human dynamo, physically, mentally and spirituality. He was the first among moderns who lived and taught others to live upto the permanent values of our culture. He gave us the first programme of cultural reintegration, most of which has now been associated with Nationalism; removal of caste distinction and untouchability; equality of women; highest scientific education grafted on an education essentially Indian; the use of national language and the pursuit of Sanskrit as a predominant national influence; repudiation of Westernism; re-organisation of life on a basis of freedom as in Vedic times; a sturdy resistance against foreign rule and alien culture. Madame Blavatsky said : "India saw no greater scholar, metaphysician, orator and denunciator of evil since Shankaracharya."

As a representative of the creative art of life in modern times he stands supreme; ***a spirit of titanic stature*** through which worked the force of an immense creative power.

- Kanhaiyalal Maneklal Munshi

(Source : 'The Creative Art of Life – Studies in Education', by : KM Munshi, Published for Bharatiya Vidya Bhavan, By : Padma Publications Ltd. – Mumbai, first published 1946, pp. 72-73) ◘

Contributed by Shri Harrydev Ramdhony, Secretary Arya Sabha Mauritius

Some beliefs and disbeliefs of Swami Dayanand Saraswati ji

Rutnabhooshita Puchooa, M.A.,P.G.C.E.

Swami Dayanand Saraswati was born in an orthodox Brahmin family. His parents were staunch followers of Lord Shiva, but Swamiji at the age of 13, while fasting and praying on Mahashivaratri night got his 'bodh' – awakening. He then went out in search of the real Shiva, the true God. He became the greatest reformer, the architect of modern India.

Religion and God

Swamiji believed that Sanatan Dharma or Eternal Religion is that set of universal doctrines which belong to all countries and all men, which were accepted in the past, are being accepted in the present and shall be accepted in the future by everybody.

According to Swamiji, there is only one God, called by many names each describing one of His nature, qualities and actions, for example :

'Indra' – He is powerful and resplendent,

'Vishnu' – He pervades all the movable and immovable world,

'Parameshvara' – He is the mightiest among the mighty and there is none equal to Him.

God has infinite qualities : He is infinite, unborn, eternal, omniscient, unchanging, almighty etc. He is the Creator of the universe as well as its impeller. Swamiji did not believe in the incarnation of God because the Infinite cannot be contained in a body. God does not take birth nor suffer deaths. He does not undergo changes.

Moreover, Swami Dayanand Saraswati upheld the Vedas as the one and only Revelation by God containing true knowledge; the Vedas stand as infallible authority in themselves.

Upbringing of children

Swamiji upheld **"Matrimān Pitrimān Achāryavān Purusho Veda"** that is, a man becomes learned only when he has three proper instructors – the mother, the father and the preceptor. Blessed is that family, and most fortunate is that child whose mother and father are equipped with righteousness and learning. Swami ji maintains that the mother gives the best advice and does the greatest good to her children besides bestowing unconditional affection and care upon them. Swamiji believed that the mother has the greatest influence on the child right from conception. She teaches values and moulds the character of the child.

Education

According to Swami Dayanand Saraswati, education should be conducive to learning good manners, righteousness and self-control as well as dispel the darkness of ignorance.

Rishi Dayanand believed that all men and women, boys and girls of all classes have a right to education. He was farsighted and advocated that only education can improve the lot of everyone and bring happiness and prosperity to the whole of humanity. He enjoined everyone to read the Vedas, which women and people of lower classes were not allowed to touch or even to listen to the mantras being sung or recited.

Family Life

Swamiji was against child marriage. He maintained that man or woman should get into matrimonial life only after completing the full course of brahmacharya, after finishing studies and having attained body and mental perfection. When man and woman wish to marry, there should be compatibility of learning, temper, manners, features, age, health, family and physique for happiness in the marriage.

Swamiji concurred with Manu Maharaj (Manusmriti III, 60) that "Happiness, prosperity and grace reside in that family where the husband is satisfied with the wife and the wife with the husband. Where there is discord, there reign misery, poverty and recrimination."

Swamiji advised Svayamvara (self-choice) as the best form of marriage. Moreover, he believed in showing great respect and giving good treatment to women for a happy and prosperous family. The family in which ladies are honourably treated produces men of learning. They are called devas and live a happy life. But no success attends upon such families wherein ladies are not respected.

On the other hand, Swamiji enjoined upon women to attend to their various household duties very cheerfully. They should clean the house, get food prepared cleanly, keep proper account of expenses and show these to their husband.

Swamiji also accepted re-marriage of child widows.

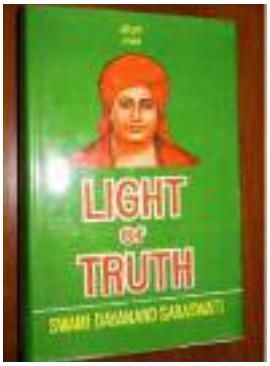

Caste system / Varna Vyavasthā

Swamiji quoted the Vedas in support of his belief that the caste system does not depend on birth, but on merits, profession and temperament. For example, a person who is learned, has good habits and is always engaged in good actions is fit to be called a Brāhmana even though not born in a Brahmin family, while an ignorant man, although born in a Brahmin family, deserves to be called a Sudra.

Purushārtha (effort) v Fatalism

Swamiji believed that effort is superior to destiny (or fate) By dint of great effort we can achieve success while lack of effort spoils everything.

Law of Karma

'As you sow, so you shall reap' – Swamiji believed that no sins are forgiven by observing fasts, bathing in holy rivers or going on pilgrimage. He maintained that if we do good actions, we shall enjoy the fruits later, while our bad actions will inevitably bring misery to us. Therefore, we must perform our actions after due consideration of right and wrong and carry out only those that are beneficial to all or at least not harmful to anyone.

Samskāra

Literally this means purification, but technically it stands for purificatory ceremonies.

For Swamiji, Samskāra is that which improves the conditions of the body, mind and soul. There are sixteen samskāras beginning with impregnation and ending with the cremation of the body. Swamiji maintained that no ceremonials should be done for the dead after cremation.

There are many other beliefs of Swamiji, some of which are found in the ten principles of the Arya Samaj.

The beliefs and disbeliefs of Swami Dayanand Saraswati have been invaluable in removing the bondage of ignorance and disseminating the light of knowledge thus enhancing the life of people not only of India, but also of other countries especially those having the Indian diaspora. He also fought for the social liberation of the lower classes. No doubt, this has helped in bringing peace, happiness, progress and prosperity in all those countries where the teachings and beliefs of Swamiji have been spread by the Arya Samaj Movement. ◘

Rishi Bodh Mahotsav:

Swami Dayanand and Gender Parity

Poonum Sookun-Teeluckdharry
Barrister at Law, LLM, President, AWWA

This is an expose on women's path of Bodh in the fight against discrimination to which they were subjected to since birth and connecting it to the International Day of Women, which is celebrated on 08 March internationally and this year the international corporates' motto for the celebration of this day is 'pledging for parity'.

Gender Equality is now finding its way in every nook and corners of the society and has also become a global initiative. The world has accepted the principle of equality between women and men when the Charter of the United Nations, was signed in 1945 and is the first international agreement to affirm this principle. Women have since long been battling against all forms of discrimination meted to them.

In the Western world, it was around 1909, when a political party of America recognised as a first National Woman's Day (the 28th of February 1909) to honour the strike by women garment workers who had protested against working conditions in New York. Whilst this was only a National celebration, the first International Day to celebrate women was only in 1911 when work discrimination was highlighted. It was an effort to end such discrimination at work. Such international movements evolved and in the year 1975, the United Nations started celebrating the International Day of Women on 08 March as we celebrate it today.

In India, to battle against the various forms of discrimination meted out to women, Swami Dayanands' reform and vision was that the education of the women was a necessity as in those days as girls were not sent to school. It was as far back as in the 1880's that the Amritsar branch of Arya Samaj took the first initiative in educating their girls and by 1885, three girls' schools were established. It was after several attempts that the Jalandhar Samaj in December 1886, established a school for the girls.

The Society still not being fully convinced on the need of educating girls for their own sake were instead concerned that the women had to be educated in order to adapt in their family life especially when they are wedded to educated men and as a result in the 1890's the Kanya Mahavidyalaya in Jalandhar was set up to impart to them an advanced kind of education. It is to be appreciated that the founder of the Kanya Mahavidyalaya, Lala Devaraj and other supporters faced lots of criticisms and attacks both from inside and outside the Samaj. It was with a lot of struggle but Lala Devaraj was able to promote the view that women's education was a vital for nation building and not simply a social and charitable work.

The initiatives of the Arya Samaj to educate and uplift women's lifestyle dates back to earlier than those of the Western world in the fight of the discrimination against women. **Today's vision in 2016 'To Pledge for Parity" is in fact what Swami Dayanand advocated in the third quarter of the 19th century.** It is currently accepted that gender parity is linked to economic prosperity and women in position of power and leadership are central to achieving such economic prosperity. Swami Dayanand had affirmed, some 150 years ago, that women are no different from men, that they are instead equal to men enjoying similar rights and that triggered the struggle to end discrimination against women.

Rishi Bodh Mahotsav, the celebration of enlightenment of Maharishi Dayanand Saraswati, the Aryan Women Welfare Association (AWWA), is able to celebrate in collaboration, through the propagation of the Satyarth Prakash, in the form of a Code of Conduct for Women. ◘

The Importance to celebrate 'Rishi Bodh'

Geeanmatee Ghoorah

'Rishi Bodh' celebration is an occasion to remember Maharishi Dayanand Saraswati – the founder of the Arya Samaj Movement and one of the pioneers of Indian Renaissance.

It was on the auspicious night of Maha Shivratri, during his vigil that he received enlightenment. He was greatly intrigued when he witnessed a mouse polluting the offerings (prasd) to the idol (Shiva). It gave rise to many doubts in his young inquisitive mind. That incident triggered his quest for truth as to the existence of God and led him to search for the real 'Shiva'. That was a turning point on his life.

For Arya Samajists across the globe Rishi Bodh is an occasion to remember this great soul, to reflect on his teachings, to renew their pledge to abide by the principles laid down by him in his Magnum Opus, the Satyrtha Prakash. Yet, many Hindus are still labouring in darkness held by the shackles of age old prejudices and superstitions.

India was going through the darkest period of its history when the Arya Samaj was founded in 1875 in Bombay by Maharishi Dayanand Saraswati. The vast majority of Indians were illiterate. Due to ignorance they became prey to irrational beliefs and blind-faith.

India was fortunate to have at that time someone of the stature of Maharishi Dayanand Saraswati. His main concern was the salvation of the millions, who have over generations been fettered under the inhuman treatment and prejudices by a few. He set about the herculean task to eliminate the plagues threatening the very fabric of society.

His clarion call "Back to the Vedas" brought about the Vedic Renaissance. Women particularly should be indebted to him : he liberated them from the bondage of ignorance.

The Vedas constitute the most sacred heritage of mankind. Strict adherence to truth is emphasized in the Vedas. Their teachings are meant to unite us with love rather than disuniting us with discord. All humans are born free. In the Satyarth Prakash he emphasized on the importance of education for all, irrespective of class, creed or sex. He drew special attention to the importance of education for women. Swami Ji forcefully advocated: "A person becomes learned only when he has three instructors. First and foremost the mother, then the father and the preceptor. Blessed is that family and most fortunate that child whose mother and father are equipped with righteousness and learning." He stood as a staunch champion of women empowerment and emancipation.

'Rishi Bodh' is a good time for women to re-iterate their pledge to uphold his ideals. It is worthy to note that long before the suffragette movement spearheaded by Emmeline Pankhurst in the west to liberate Western Women from the shackles of injustice and inequalities, Indian women had the opportunity to enjoy equal right with man, thanks to the awareness brought about by Swamiji.

The Arya Samaj movement provided women with the right to education, to undertake the study of the scriptures. Swamiji severely condemned the evil and cruel practice of 'sati prath' whereby the wife was burnt alive on the pyre of her deceased husband. He fought vehemently against child marriage and campaigned for widow remarriage. He firmly believed in the saying that if you educate a man you educate one person whereas if you educate a woman you educate a whole nation. It is very truly said "the hand that rocks the cradle rules the world".

It is in fitness of things that we celebrate 'Rishi Bodh'. Swamiji has been the saviour of thousands of voiceless, especially women. He has saved society from the damage and harm done by superstitious and misleading concepts. He specifically emphasized that the concept of womanhood does not put women to disadvantage as compared to man either in her social position or in her own personal achievements. We are deeply indebted to him for that. ◘

rishi bodh

Ramkarrun Jokhoo

It was a long time ago, just before the advent of Swami Dayanand, the Maha Rishi. There was a very rich man, Satyam, who had everything one could wish for. His wealth was seemingly inexhaustible and his properties inestimable. He was kind and generous, pious and virtuous, wise and imaginative, eminent and popular, loving and venerable, just and forgiving, and diligent and prosperous.

Satyam had only one weakness in his life : his overindulgent, almost fanatical, love for his six sons. He spoilt them by lavishing on them everything and anything they wanted. His wife could not stop him from spoiling their sons. She had neither power nor right or say, like all the other women of that time, and like her six daughters who were deprived of everything except their existence and their mother's love.

When Satyam's sons grew up none of them acquired his qualities. They were influenced by the uncultured society of that time. They believed they belonged to the high class because they were Satyam's sons. They became arrogant and naughty. They ill-treated the poor, the weak, the low-class people, and the women. They encouraged, supported and participated in all kinds of atrocities and dogmatic injustice, such as child-marriage, the ban on women's right to read, write or study, depriving the poor and defenseless of the benefit of education, the immolation of widows on their husbands pyres, extortion in the name of dowry, the servile treatment of women, deprivation of basic, rights to common people, and so on and so forth.

Widespread miseries became rampant and sufferings – a breeding ground for immorality. There was a near-total decline of true religion and a near total peak of ignorance among the people. Superstitions and blind-faith/worship were shrouding India, the motherland of Satyam whose sons had become the embodiment of notoriety. They refused to see him or listen to his advice. Greed, power, selfishness and extravagant materialism had taken over their lifestyle. Because they refused to see their father he went in search of someone who could save his sons from the clutches of their diabolic infatuation.

Satyam's search was motivated by the work of God who is the all protector. It was not easy to find the person he was looking for, but eventually he found one to save one of the sons and thousands of those who followed him. Thus Satyam's ideology survived.

Man always tries to improve the family he has established, and not to tarnish it or have it tarnished by others. God inspires man not to fall in the abyss of ignorance and degeneration. He imparted to man His wisdom through the Vedas. When India, the cradle of civilization, was almost buried under such a rubble; when India was tyranised by foreigners for a long time and coerced into accepting man-made religions; and when the wisdom of the Vedas was deliberately suppressed for over five centuries; Moolshankar was born in 1824. He became a Sanyāsi, known as Swami Dayanand. He worked to halt the decadence and restore the journey of spiritual, humanitarian, cultural, and educational progress.

He was a uniquely gifted scholar, teacher, social reformer, master of Vedic knowledge, and exponent of truth. He propagated the Vedic Philosophy boldly, selfless and indiscriminately. He taught that the Vedas belonged to the world, not confined only to India. He established the Arya Samaj movement, a society of noble people whose thoughts, deeds, ….etc. were founded on truth, humanity, spirituality and divinity. The prime object of the Arya Samaj he wrote is to do good to the whole world,

i.e. uplift the physical, moral and spiritual standards of all.

Swami Dayanand wrote several books on how to bring about harmony, happiness, peace, virtue, nobility and civilisation in the world. The 'Light of Truth' is his Magnum Opus with which he intended to ennoble the world via the teachings of the Vedas. Swami Dayanand's vision was to annihilate all the atrocities, ignorance, superstitions, slavery, tyranies, poverty and miseries infesting the world. He did not fail. His work goes on.

Swami Dayanand's achievements were inspired by his enlightenment on a Shivaratree night, after he realized that the God people were praying to could not be Omnipotent, Omnipresent, Omniscient, eternal conscious, and imperishable. It was in 1838 when he was barely 14 years old. That was a coincidental turning point in his life. Only an enlightened one could have achieved what he did in those days, given the adverse circumstances, and among so many who opposed his views and tried to eliminate him and his ideals.

If there is a worthy reason to celebrate worldwide an 'enlightenment' it is surely Swami Dayanand's. If there is a worthy path to follow to the realm of salvation it is definitely the one shown by Swami Dayanand. If the world can be ennobled it is only by the Vedic ideals advocated by Swami Dayanand. If the Vedas, the unique divine revelation have been revived it is through the devotion of a miracle worker named Swami Dayanand.

If God can be understood and perceived it is only through the exposition of the Vedas by Swami Dayanand. Salutations to the enlightened one! Let us all celebrate Rishi Bodh today, throughout the year, and year after year till eternity. ◘

I want to go home – where is your home?

Mansjay Sobnach

Over the ages, across the continents and oceans, nations have fought countless wars and battles resulting in widespread destruction, deaths, miseries and upheavals with dire consequences for the entire human race. The horrors of the first and second World wars were a nightmare in terms of human suffering and destruction on a scale never seen before. Well-intentioned leaders gathered to save the planet from annihilation, and in this way the United Nations was born.

Irrespective of where, when and why wars are fought, soldiers are in the fronts and one can imagine the trauma and phobia they go through. Many die on the battlefields, many maimed for the rest of their lives and many more lose their heads, good for rehabilitation.

Mike, an international daring reporter, is in the cross-fire catching pictures and reporting to the outside world. This is what one soldier who did not want to be named said, "Am tired, I want to go home." Humpert, a brigadier, said, "The war has dragged on for too long, I want to see my wife and children. I want to be home." It is on the lips of all soldiers to return Home, Sweet home. No battle field is one's home.

No place on Earth can be sweeter than home, the place where we grow and are groomed, where joys and sorrows are shared, where we feel secure, free and surrounded by our own. Home is such a place that its memories never fade. The dying man does not want to stay at the hospital. No one wishes to breathe his last away from home. The touch one receives when surrounded by family members is the last most touching farewell link before one is disconnected.

As university students, at a time when the only means of communication was an air mail, we still remember how difficult it was to be torn away from our families and we remained home sick for long. Days, weeks, months and years were counted. After graduation, nothing would excel the longing to return home.

When Ram was exiled for 14 years, the pain for king Dashrath to be separated was terrible. He was ready to sacrifice anything except separation but even then, although blessed by limitless wealth, he could do nothing but bow to the whims and caprices of a wife who had lost sense of direction. The mother, Kaushaliah, the very symbol of love, collapsed on hearing her son's exile. The distance between child and parent is gruesome.

The world is becoming global, distance can be covered at incredible speed and furthest places can be connected in less than 36 hours. The younger generation must be trained to adapt and survive away from home in exceptionally difficult conditions and circumstances. The exodus migration affecting Europe today is a classic example of the capacity of men to brave their own lives along with their wives and children to look for a place where they can live and breathe a decent life. Their own home place has become a graveyard, no more a place to grow and live.

Everyday, certain people are counting and carrying dead bodies, missiles leave no one. No place is safe. Children watch the carnage, the cries, explosions, booming of canons and countless buildings billowing with smoke. They cannot enjoy their childhood that is consumed in an ocean of fear, mistrust and perpetual uncertainty. Their home is on fire.

Home is sweet home. What is happening on the world scene is a replica of what we have seen in the Mahabharata and the Ramayana. What we are witnessing today is not a first happening. Watch, you will see more.

Where is your home? Is it true that there is no better place than home? Go through our holy writings and learn how far great souls travelled and how they surmounted obstacles and how they managed to make every place a home. They moved far and wide and wherever they set their feet the welcome was great and when they left, they were remembered for their wisdom, bravery and unflinching attachment to their mission. When the call to defend your Motherland against foreign aggression is made, will you not rise and answer to the duty of a patriot? Wars last long, very long indeed, and returning home is promised to no one.

The youth of today must wake up, learn and understand that the world is shrinking. No place is unreachable, impossible or inhospitable. The deserts are drab and dreary where a single blade of grass do not grow, yet they may hide unbelievable wealth in their bosom. Tomorrow will embrace trans-migration for political, economic and diplomatic reasons. This cycle of migration has been going on for so long. Swami Dayanand, the symbol of perfection and truth, during his mission had elected other places his home.

Every place is home, depending on how you have been mentally trained to adapt. No place is alien for God never created the universe and set frontiers to separate man from man. Australia and the United States of America are examples of two countries made up of mostly foreigners who left their own lands to make a home elsewhere. Seafarers circumnavigated the globe and risked their lives at the peril of the merciless oceans to discover new lands and in this way many made new homes.

The child that never returns home, not even once, to meet his parents and relatives and the many friends he walked with must belong to a superior race. ◘

Realising the objectives of celebrating Rishi Bodh

Anybody can attain Bodh
Anybody can become a Rishi
…Terms & Conditions apply

Bodh

Dictionaries define Bodh as gaining knowledge through self-experience (pratyaksha jnāna). Numerous persons are famous for having noticed (discovered) a particular aspect of the laws of nature or for inventions. These relate to specific knowledge about worldly matters. Bodh connotes to a higher state of affairs: spirituality or spiritual reality, in particular the real purpose and concepts underlying human life. Spiritual experiences are not the objects of our senses but rather involves the seat of feelings and emotions (*māna*).

Maha Shivaratri - a turning point in the life of Mool Shankar

Rodents polluting the offerings to the idol (Shiva) on the night of Maha Shivaratri triggered young Mool Shankar to shun untruth. More importantly he dared to set out in search of truth.

After acquiring sound / precise knowledge on (i) the concepts of God, (ii) the real purpose of life: dharma, artha, kāma and moksha, (iii) practice of the highest level of Yoga, (iv) God realisation *(Ishvara sākshātkara)*, he became a *rishi* (seer). It is reported that Maharishi Dayanand often had recourse to samādhi, i.e. communion with God when he felt the need to deepen his knowledge in order to further elaborate on topics which he dictated for publishing books.

Many, before him and even nowadays, have been / are witness to such events. Yet, people remain in their inertia; they never dare to search for truth and stay put in a supposedly comfort zone.

Gayatri Mantra – a prayer to God to illumine our intellect

… dhiyo yo nah prachodayāt (YV36/3) seems beyond our reach! Likewise our prayers for *medhā buddhi:* such as (i) Sadasaspatim…medhāmayā shisham svāhā… (YV32/13), (ii) Yam medhām devaganā…medhayāgne medhāvinam kuru svāhā (YV32/14), (iii) Medhām me varuno… medhā mindrashcha…medhām dātā… (YV32/15) seem to fall on deaf ears. Why?

Our prayers are unsuccessful because of lack of knowledge

We lack commitment… we do not want to learn the basics about prayers… we go only for the rituals… Had we cared to know the meaning of at least a few of the hymns (mantras) and the methodology spelt out in the Vedic ideals we would be praying to God only when we have had put up our utmost efforts in our tasks *(poorna purushārtha)*. Only then the almighty will answer to our prayers!

No effort will produce zero result. Some effort may give us some respite but never the expected results. The dictum related to computers garbage-in garbage-out (GIGO) is not a term of the modern days. It applies to all spheres of life since time immemorial more so in spiritual matters.

Lip-service is similar to the plant that grows flowers and bears fruit without being able to enjoy the fragrance of its flowers or the taste of its fruits. Bodh is the decision to move ahead of an event with a view to enlighten ourselves after that occurrence.

Medhā buddhi : the successful end-result of 'dhiyo yo nah prachodayat'

Medhā buddhi is the state where one's intellect is enlightened. It is the successful end-result *'medhāvi nāmāni'* (Nirukta 1.6.3) whereby we are empowered to catch the meaning of words and / or events; to differentiate (i) truth from untruth *(satya-asatya)*, (ii) virtue from immorality *(dharma-adharma)*, (iii) duties from irresponsibility *(kartavya - akartavya)* and apply the mind, speech and actions

(manasā, vāchā & karmanā) accordingly. There is perfect harmony at all times between the thoughts, speech and deeds.

Medhā buddhi is not only the state where one is inquisitive with an ardent desire to know but the state where true decisive knowledge *(nischayātmak jnāna)* keeps us away from doubts *(shanshayātmak jnāna)* and opposite knowledge *(viparita jnāna)*. It yields a plus value / synergy between fullness of intelligence *(buddhimattā)*, cleverness *(chaturāyi),* alertness *(hoshiyāri)*, insight *(soojhboojh)*, sharp, energetic and subtle intelligence, farsightedness *(deergha dhrasti)*.

Pre-requisite for Bodh

'Swayam vājinstanvam….' (YV 23/15) states that one who desires to attain *Bodh* has to uplift his physical standards. Then he has to look for learned persons, pay obeisance to them and put up the fullest efforts in the process of acquiring knowledge.

Vedic seers have already chalked the line in the mantra : 'Sahanāvavatu, sahanau bhunaktu…' whereby both the learner and the teacher vows to do their utmost to increase the welfare of each other, not to allow the least trace of hatred to undermine their relationships and to strive to increase each other's knowledge.

This objective was realised by both Swami Dayanand Saraswati and Guru Virjanand ji. The practical application of such knowledge in day-to-day life along with the regular practice of *(yogābhyāsa)* as per the eight-fold process of yoga *(ashtānga yoga)* Maharishi Patanjali transformed Swami Dayanand into a *Rishi* (Vedic seer/sage.)

The learning curve for complete Bodh

Step 1: Ordinary mind (Sāmānya buddhi)

This is the stage of the common man. Worldly knowledge predominates. Concepts of human life are not so clear or even if clear they are shelved as outdated or impractical. The tendency is towards materialism, consumerism, exploitation, etc. Spirituality is more or less limited to rituals.

Step 2: Discriminative intellect (Medhā buddhi)

The person is able to judge truth vs untruth, virtue vs vice, duties vs carelessness, etc… He applies the concepts to harmonise his thoughts, speech and actions. Spirituality is an important and practical part of his life. He does his utmost to walk-the-talk throughout all his dealings. He is conscious that he cannot escape the divine all-Justice Omnipresent and Omniscient being, thus adheres to Dharma (10 tenets of Manu) and the tenets of social discipline (*yama*) and personal discipline (*niyama*.)

After step 2, progress is only through the ever-consciousness of the discerning power of the intellect. Capacity-building occurs during the practice of Ashtānga Yoga. Maharishi Patanjali has only upheld the practice of Yoga in line with the teachings of the Vedas. Maharishi Dayanand has on the basis personal experience (mantra-sākshātkāra) re-affirmed these concepts in his Veda bhāshya and in the Ishvara Stuti Prārthanā in the Samskāra Vidhi :

YV13/4 'Hiranyagarbha… kasmai deva yahavishā vidhema' - yoga practice and passion in reverence to God yields His blessings- immaculate bliss.

YV25/13 'Ya ātmada balada… kasmai deva yahavishā vidhema' - reverence to God is abiding to the Vedic ordinances which He has gifted to mankind.

Further endorsement of the practice of yoga (yogābhyāsa) as pre-requisite to attain Bodh is found in all four Vedas (Rig, Yaju, Sāma & Atharva.)

Step 3: Continuous flow of one thought (Ritambharā prajnā)

Compliance to the tenets of Dharma, Yama and Niyama empowers the person practising yoga to tranquilise the mental and emotional flux /instability. There is continuous flow of one thought which increases lucidity of the mind.

Step 4: Illuminated mind (Prasankhyāna jnāna or Viveka khyāti)

The practice of all the eight elements of Yoga causes the destruction of impurities / evils *(klesha)* and therefrom comes the shine of discerning knowledge *(medhā buddhi)*. This is an ongoing process, not a one-time event.

Yog Darshan (sutra 1.14) 'sa tu deerdhkāle nairantara satkāra sevito dreedh bhumi' expounds that with the practice of yoga over a long period of time, regularly, with passion and devotion, this shine of knowledge becomes long-lasting knowledge.

Social discipline (*Yama*) and personal discipline (*Nyama*) are constantly reinforced. Asana, prānāyama, pratyāhāra, dhāranā, dhyāna deepens conviction. The flow of discerning knowledge becomes incessant and effortless in Samādhi.

In the initial stage, i.e. *samprajyāta samādhi*, the seeker attains self-realisation and realisation of the prime material *(ātmā & prakriti sākshātkara)* with clear-cut knowledge *(Yathārtha jnāna)* about these two entities. He able to differentiate between right and wrong, healthy and unhealthy, truth and untruth, fact and fiction, real and imaginary, and more importantly the soul (ātmā) and the body as distinct objects.

Step 5: God-gifted knowledge (Ishvara pradatt jnāna)

Bhadramichchanta rishaya… (AV 19.41.1) is more fully described in Yog Darshan 2.1 as 'Tapa swādhyāya ishvara pranidhānāni kriya yoga' whereby the yogi practices penance… He does not indulge in the objects of the senses, rather uses them to captivate the shine of knowledge… He enhances his ever-awareness as to the omnipresence and omniscience of God… He selflessly serves others as well as shows them the path to self and God-realisation.

The seeker shuns the state of samprajyāta samādhi to progress to the maturity stage, *asamprajyāta Samādhi,* where he attains communion with God *(Ishvara shākshātkara)*, enjoys the bliss of God as well as obtains direct knowledge from the almighty *(mantra sākshātkara)*.

Rishis

Rishiyo mantra drashtarah (Nirukta 1.6) refers to Rishi a person who has attained *mantra sākshātkara in mantra sākshātkara,* in the subtle faculty of the body – mana, which is referred as the 11th sense organ *(antah karana)*. The enlightened, at the highest level of samādhi is blessed with direct knowledge from God *(Ishvara pradatt jnāna)*.

Lifestyle of rishis

Rishis are people who have not the least attachment with worldly or material pleasures *(virakta purusha)*. Their level of renunciation *(vairāgya)* is of the highest order - *Sanyāsa*. The soul (*ātmā*) has full control over the mind, senses and body as a whole '*Sushārathi*' (YV 34/6), like the jockey in complete control of the reins and leading the horse to victory.

The mind, body and spirit engage only in virtuous selfless service, serve to be in communion with the Almighty, strive to continuously halt the flux of mental and emotional activities *'Yogashchitta vritti nirodha'* (YD 1.2). Rishis follow the rules of God at all times and at all levels – thoughts, speech and actions. They engage in imparting this delicate knowledge to others in return for services rendered to them: *bhikshā*, i.e. – alms (food, clothing & shelter).

Increase of knowledge

Unlike scientists, researchers, etc. Rishis do not perform experiences to validate their knowledge about a particular subject. They just go into samādhi and realise the understanding of the subject matter they look for : *Rishi darshanātha (*Nirukta).

Rishi antah karana mein mantrārtha ka darshan kartā hai aur nihita bhāvnā ko Jeevan mein charitārtha karta hai. Working experiences are common to all. However the realisation of the inner-self is private to each individual. Rishis attain mastery of the mind with an automatic and spontaneous manifestation of the mind. They attain perfection *'Tatah kritārthānam parināma kramasamāti gunānām'* (YD 4.32).

Need to change our mind set to become Rishi

Rishis, through the practice of Yoga continue to enhance their level of enlightenment along with an enhancement of their level of harmony with nature. If we change within ourselves the world will also change for us. Internal transformation is always accompanied by a corresponding change in the outer atmosphere. A change in consciousness produces a transformation of existence. The key word is 'change in mind set'.

Bodh & Rishi

Bodh is a stepping stone towards becoming a Rishi. Suffice that we resolve and act to realise those resolutions to attain the highest level of discerning power as well as harmonise our thoughts, speech and deeds.

Rishe (YV 28.23) describes a rishi as '*mantrārthavit*', i.e. one who possesses factual knowledge of mantras, realised during samādhi. The road map to complete the cycle of knowledge (bodh) and to become a rishi wanders through fields of *shudh jnāna, shudh karma* and *shudh upāsnā (*perfect and untainted knowledge, deeds and meditation.)

ARYODAYE

Arya Sabha Mauritius

1,Maharshi Dayanand St., Port Louis,

Tel : 212-2730, 208-7504, Fax : 210-3778,

Email : aryamu@intnet.mu,

www.aryasabhamauritius.mu

प्रधान सम्पादक :
डॉ० उदय नारायण गंगू,
पी.एच.डी., ओ.एस.के., आर्य रत्न

सह सम्पादक :
श्री सत्यदेव प्रीतम,
बी.ए.,ओ.एस.के,सी.एस.के.,आर्य रत्न

सम्पादक मण्डल :

(१) डॉ० जयचन्द लालबिहारी, *पी.एच.डी*

(२) श्री बालचन्द तानाकूर, *पी.एम.एस.एम, आर्य रत्न*

(३) श्री नरेन्द्र घूरा, *पी.एम.एस.एम*

Printer :

BAHADOOR PRINTING LTD.

Ave. St. Vincent de Paul, Les Pailles,

Tel : 208-1317, Fax : 212-9038

Like the oblations of Yajna which purifies air, water, etc. rishis use their knowledge to bring material as well as spiritual prosperity to others.

The objective of celebrating Rishi Bodh

Rishi Bodh is time to develop our awareness of the terms and conditions that we need to fulfil to attain Bodh and thereafter become Rishi. Maharishi Dayanand only knew what was wrong about the concept of God. He had to spend years searching for the true concepts. He then disseminated this knowledge through discourses, writings and debates.

Like the cook who prepares the various dishes and serves them to the hungry, Maharishi Dayanand Saraswati served us with in-depth knowledge to realise the goals of human life. Subject to a walk-the-talk policy, we should, in a lesser lapse of time, be able to assimilate that knowledge, develop the discerning power of our intellect attain self and God-realisation… in short attain Bodh … and become Rishis.

How far… How close… is matter of self-introspection (*ātmanirikshan*). Let us dare to look into the mirror and re-gear to be worthy of *shudh jnāna, shudh karma* and *shudh upāsnā*. ◘

Yogi Bramdeo MOKOONLALL, Darshanāchārya
Arya Sabha Mauritius

Bibliography : (1) (RV) Rig Vedā, (YV) Yajur Vedā, (SV) Sam Vedā, (AV) Atharva Vedā , (2) Satyārtha Prakash, Rig Vedādi Bhāshya Bhumikā, Samskāra Vidhi, Aryābhivinaye (M. Dayanand Saraswati) (3) (YD) Yog Darshan , (4) Nirukta , (5) Ekādashopnishad

आर्य समाज के दस नियम

TEN PRINCIPLES OF ARYA SAMAJ

१. सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।
The first efficient cause of all true knowledge and all that is known through knowledge is Parameshwara – The Highest Lord, i.e. God.

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।
Ishvara (God) is Existent, Intelligent and Blissful. He is Formless, Omniscient, Omnipotent, Just, Merciful, Unborn, Endless, Unchangeable, Beginningless, the Support of all, the Master of all, Omnipresent, Immanent, Unaging, Immortal, Fearless, Eternal, Holy and the Maker of all. He alone is worthy of being worshipped.

३. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।
Vedas are scriptures of true knowledge. It is the first duty of the Aryas to read them, teach them, recite them and hear them being read.

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।
One should always be ready to accept truth and give up untruth.

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ।
One should always do everything according to the dictates of dharma, i.e. after due reflection over right and wrong.

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
Doing good to the whole world is the primary object of this society, i.e. to look after its physical, spiritual and social welfare.

७. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।
Let thy dealing with all be regulated by love and justice, in accordance with the dictates of dharma.

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।
One should promote vidya (realisation of subject and object) and dispel avidya (illusion).

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।
One should not be content with one's own welfare alone, but should look for one's own welfare in the welfare of all.

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।
One should regard one's self under restriction to follow altruistic ruling of society, while in following rules of individual welfare all should be free.